स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

रिखियापीठ सत्संग

भाग 4

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

रिखियापीठ सत्संग
भाग 4



WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

रिखियापीठ सत्संग 4

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रिखियापीठ, देवघर में सन् 2005 से 2009 के बीच
श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संग



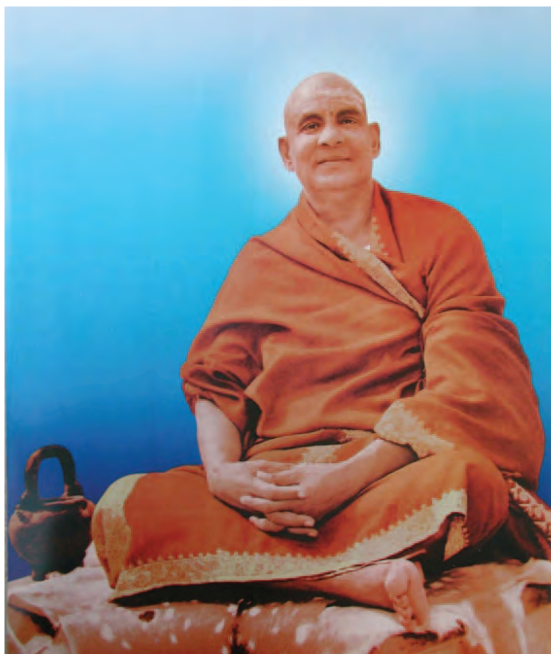
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम प्रकाशन 2013

ISBN: 978-93-81620-49-6

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड
नयी दिल्ली

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

शतचण्डी महायज्ञ का श्रीगणेश

1 दिसम्बर 2005



यज्ञ परम्परा

यज्ञ परम्परा मनुष्य के जागरण से शुरू हुई, सभ्यता की जागृति से नहीं। जब मानव अपनी गहरी नींद से जागा, तो उसने अपने आस-पास कुछ जलता हुआ देखा। वह अनजान चीज बहुत गर्म थी, और अपने मार्ग में सभी को निगलते जा रही थी। मानव को तब पहली बार आग का अहसास हुआ। पशु-पक्षी भी हज़ारों-लाखों सालों से इस चीज को देखते आए हैं, लेकिन आज तक वे अग्नि के प्रति जागरूक नहीं हुए हैं। मनुष्य अग्नि के प्रति जागरूक बना और इसी से यज्ञ की शुरुआत हुई।

इसलिए यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि यज्ञ की परम्परा अग्नि की खोज से शुरू हुई और अग्नि की खोज मनुष्य की जागृति से हुई, भले ही यह अग्नि मनुष्य के बहुत पहले से विद्यमान रही है। अग्नि तत्त्व शाश्वत और अनादि है। इसका अस्तित्व हर जीव, हर प्राणी से पुराना है। देखा जाए तो यह तत्त्व इस भौतिक सृष्टि से भी पहले मौजूद था। लेकिन मनुष्य को मालूम नहीं था कि यह क्या है। जिस क्षण वह अग्नि के प्रति सजग हुआ उसी क्षण यज्ञ प्रारम्भ हुआ। याद रखने लायक यह पहली बात है।

चिदग्नि-कुण्ड-सम्भूता

यज्ञ मात्र कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं, न ही यह किसी ऐतिहासिक परम्परा का अवशेष है। यज्ञ उस दिन का द्योतक है, जिस दिन मनुष्य उस कुण्ड से जागा जहाँ आग जल रही थी। इससे सम्बन्धित मंत्र *चिदग्नि-कुण्ड-सम्भूता* है। *चित्* का मतलब चेतना। चाहे वह चेतना मनुष्य में हो या कुत्ते, गधे या अन्य किसी चराचर पदार्थ में। *अग्नि-कुण्ड* का तात्पर्य ऐसे गड्ढे से है जिसके भीतर अग्नि प्रज्वलित है। *सम्भूता* का मतलब वह जो पैदा हुई, उत्पन्न हुई। यह शब्द स्त्रीलिंग है, पुल्लिंग नहीं। अगर पुल्लिंग होता तो *सम्भूतः* कहते। तो इस मंत्र का अर्थ यह निकला कि जो चीज अग्नि-कुण्ड से उत्पन्न हुई वह चेतना थी, और वह चेतना स्त्रीवाचक है।

अन्न का ज्ञान

यज्ञ का दूसरा सिद्धान्त अन्न के ज्ञान से सम्बन्धित है। जब सृष्टि शुरू हुई, तब हर एक व्यक्ति प्राकृतिक ढंग से जीता था। कन्द, मूल, फल, मांस आदि पर निर्वाह करना प्राकृतिक जीवन कहलाता है। प्राचीन मानव को अन्न की जानकारी नहीं थी। अन्न आदमी से पहले आया, लेकिन आदमी उससे अनजान था। जिस दिन आदमी को पता चला कि अन्न नाम की कोई चीज होती है, जिसे धरती में उगाया जा सकता है और पकाकर खाया जा सकता है, वह दिन यज्ञ का दूसरा दिन साबित हुआ। इसलिए यज्ञ कोई ऐतिहासिक परम्परा नहीं। तुम यह नहीं कह सकते कि यज्ञ परम्परा वैदिक सभ्यता या किसी अन्य पूर्वी सभ्यता के साथ शुरू हुई। नहीं, यह सही नहीं है। यज्ञ को धार्मिक, साम्प्रदायिक या राजनैतिक संस्कृतियों और सभ्यताओं के साथ मत जोड़ो। यज्ञ की परम्परा मानव चेतना की जागृति के साथ शुरू हुई, और इसका दूसरा अंग अन्न है।

मातृ-तत्त्व का सिद्धान्त

चित् चेतना का वह अंश है जो स्वयं को देख सकता है, जो देश और काल के प्रति सजग हो सकता है, जो स्वयं को देश, काल एवं पदार्थ से सम्बन्धित कर सकता है। देश, काल और पदार्थ के बीच सम्बन्ध स्थापित करना चित् का गुण है। यहाँ मैं चित् की बात कर रहा हूँ, चित्त की नहीं। चित्त अलग चीज है, उसका सम्बन्ध स्मृति से है। लेकिन चित् का मतलब चेतना है और तुम उस चेतना के साथ पैदा हुए हो। जब तुमने अपनी माँ के गर्भ से जन्म लिया, तब तुम्हारे अन्दर यह चेतना मौजूद थी। मगर सुषुप्त अवस्था में। धीरे-धीरे यह प्रसुप्त चेतना विकसित हुई और '*अहं अस्मि*, मैं हूँ' की सजगता जागी। उस समय तुमने सबसे पहले जिससे सम्बन्ध जोड़ा, वह तुम्हारी माँ थी। जब भी किसी प्राणी में चेतना का विकास होता है तो सर्वप्रथम वह मातृ-तत्त्व से नाता जोड़ता है। इसलिए यज्ञ का तीसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण अंग मातृ-तत्त्व है।

मातृ शब्द में मूल ध्वनि 'मा' की है। यह सृष्टि की, सृष्टिकर्त्री की, सृष्टि की सुषुप्त अवस्था की और सृष्टि की जागृति की प्रतीक है। आरम्भ में बच्चा केवल अपनी माँ को जानता है। इसलिए संस्कृत में माता शब्द का प्रयोग होता है, अँग्रेजी में मदर कहते हैं, और स्पैनिश में मादरे। तुम सभी जानते हो कि बच्चे, चाहे वे दुनिया के किसी भी भाग के हो, जब पहली बार अपने वातावरण के प्रति सजग बनते हैं और अपने सामने किसी महिला को देखते हैं, तो 'मा' शब्द कहते हैं। वे 'फा' या 'गा' नहीं, 'मा' ही कहते हैं।

अब मैं यज्ञ अनुष्ठान के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष को उजागर कर रहा हूँ, ध्यान से सुनना। यज्ञ बाह्य कर्मकाण्ड भी है और आंतरिक घटना भी। कल से जो अनुष्ठान यहाँ पर सम्पन्न किया जाएगा, वह बाह्य कर्मकाण्ड है, जिसमें उन सभी तत्त्वों को शामिल किया जाएगा जो आंतरिक यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं। तुम अगले पाँच दिनों तक इस बाह्य यज्ञ के साक्षी बनोगे। लेकिन अंतर्याग के लिए तुम्हें योग की क्रियाओं के माध्यम से अपनी आंतरिक अग्नि को जगाना होगा। योग में कहा जाता है कि मेरुदण्ड के निचले छोर पर जो मूलाधार चक्र है, उसमें एक कुण्ड है। उस कुण्ड में अग्नि को प्रज्वलित करना है, प्राणायाम और योग के अभ्यास द्वारा। यही योग का मुख्य प्रयोजन है। स्वास्थ्य, सौन्दर्य या पतली कमर नहीं। मैं यह नहीं कहता कि योग और प्राणायाम से यह सब नहीं होता, लेकिन उनका वास्तविक लक्ष्य उस कुण्ड में अग्नि को प्रज्वलित करना है।

कुण्डलिनी शब्द की व्युत्पत्ति कुण्ड शब्द से ही हुई है। कुण्डलिनी का मतलब कुण्डली मारकर बैठा साँप नहीं। कुण्डलिनी का तात्पर्य उस कुण्ड से है जो मूलाधार चक्र में है, रीढ़ की हड्डी के निचले छोर के ठीक पीछे। भले ही वह सरसों के दाने जैसा सूक्ष्म है, पर है तुम्हारे शरीर का एक वास्तविक अंग। जिस तरह तुम्हारे शरीर में थॉयरायड, पिट्युटरी, थाइमस और पीनियल ग्रंथियाँ हैं, उसी तरह एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म बिन्दु भी है, जिसे मूलाधार कहते हैं। इतने सालों से जो तुम योगाभ्यास करते आ रहे हो, उनका उद्देश्य इसी बिन्दु में अग्नि को प्रज्वलित करना है। यही अंतर्याग है। यह तुम्हारा दुर्भाग्य है कि तुमने कभी इस बिन्दु का, इस ऊर्जा का वास्तविक उद्देश्य नहीं समझा और इसका दुरुपयोग करते रहे। यही सच है भले ही तुम्हें कड़वा लगे। तुमने इसका उपयोग केवल संतान और सुखभोग के लिए किया है, आंतरिक जागरण के लिए कभी नहीं।

योग के माध्यम से तुम उस आंतरिक अग्नि को जलाते हो और चेतना जागती है। जिस चेतना द्वारा तुम अग्नि और अन्न के प्रति सजग बनते हो, जिस चेतना द्वारा एक बच्चा अपनी माँ के प्रति सजग बनता है, उसी चेतना में एक महान् जागृति आती है। तुम इसे मनुष्य जीवन का सबसे गहन, सबसे व्यापक, सबसे महान् अनुभव कह सकते हो। जागने के बाद वह चेतना सहस्रार तक आरोहण करती है। वहाँ पहुँचकर वह एक विशेष अवधि तक रहती है, हमेशा के लिए नहीं। सहस्रार में रहते हुए वह अमृत से आपूरित हो जाती है। मूलाधार अग्नि का स्थान है और बिन्दु अमृत का। तुम लोग शायद यह सब जानते होगे क्योंकि मैंने कुण्डलिनी योग की किताबों में यह सब कह रखा है। अमृतपान करने के बाद चेतना मूलाधार में लौट आती है और तब उसे आरोही के बजाय अवरोही चेतना कहते हैं।

आरोहण और अवरोहण, ये चेतना के दो अलग अनुभव हैं। जब चेतना नीचे उतर रही होती है, तब यह तुम्हारे सभी चक्रों, तुम्हारी आँखों, तुम्हारे नाक, तुम्हारी त्वचा, तुम्हारे शरीर, तुम्हारे विचारों, तुम्हारे कर्मों, तुम्हारी संवेदनाओं, तुम्हारी अवधारणाओं, तुम्हारे सिद्धान्तों – सभी को अमृत से भर देती है। तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन अमृतमय हो जाता है।

मानवता की नियति

अवरोही चेतना की अवधारणा महर्षि अरविन्द की है। वे बीसवीं सदी के एक महान् योगी थे जो पॉण्डिचेरी में रहा करते थे। दिव्य चेतना के अवरोहण

के बारे में वे अक्सर कहा करते थे। उनका मानना था कि आने वाले युग में वह दिव्य शक्ति मानव जीवन में अवश्य अवतरित होगी। यही मानवता की निर्धारित नियति है। तुम इसे चाहो या न चाहो, मगर यह होकर रहेगा।

मनुष्य की नियति आध्यात्मिक चेतना है। चेतना का जो लक्ष्य हमारे लिए निर्धारित किया गया है वह आध्यात्मिक है, इन्द्रिय या मन से सम्बन्धित नहीं। निम्न वासनाओं और कामनाओं के दायरे में सीमित रहना हमारी नियति नहीं। जीवन का प्रयोजन, मानवता की नियति खिलौनों के पीछे भागना नहीं है। मैं 'खिलौने' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, और तुम मेरा आशय समझ रहे होगे। आज सभी पुरुष, महिलाएँ और बच्चे, सारी-की-सारी दुनिया खिलौनों के पीछे दौड़ रही है। ये अविद्या और अज्ञान के खिलौने हैं। तुम बेशक ऐसे ढेरों खिलौने इकट्ठे कर लो, लेकिन एक-न-एक दिन तुम्हें यह अहसास जरूर होगा कि मानवता की नियति इस निम्न चेतना में सीमित रहना नहीं है।

तुम्हारी नियति उस आध्यात्मिक चेतना का साक्षात्कार है, जो तुम्हारे भीतर निहित है। यह कोई ऐसी चीज नहीं जिसे बाहर से लाना पड़े। तुम्हारे रक्त, अस्थि, मांस, मज्जा की तरह यह भी तुम्हारा अभिन्न अंग है। हो सकता है मैं इस शरीर में न रहूँ, हो सकता तुम्हारा यह शरीर भी छूट जाए पर जब एक नया शरीर पाओगे, तब तुम महर्षि अरविन्द के वचनों को चरितार्थ होता देखोगे। तुम देखोगे कि भावी सभ्यता और समाज में ऐसे लोग होंगे, जिनके सोचने का ढंग पूर्णतया आध्यात्मिक होगा। भविष्य का मनुष्य अपनी कामुकता, अपनी वासना, अपनी भौतिकता का अतिक्रमण कर चुका होगा। वह बौद्धिकता और तार्किकता को पार कर, आध्यात्मिक आयाम में प्रवेश करेगा। यज्ञ की अंतिम उपलब्धि यही है – आत्म-साक्षात्कार।

रिखिया में आगमन

मैं 23 सितम्बर, सन् 1989 में दिन के बारह बजे रिखिया आया। यह पूर्ण संतुलन और सामंजस्य का दिन था, जब दिन और रात बिल्कुल बराबर होते हैं। ऐसे दिन पर, ठीक मध्याह्न के समय मैंने यहाँ कदम रखा। क्या यह शुभ मुहूर्त एक संयोग मात्र था? स्वामी सत्संगी यह जमीन खरीदने यहाँ कुछ हफ्ते पहले आ गई थी। जमीन की चाहरदिवारी और अन्य इमारतें खड़ी करने के लिए उसने अमरवा गाँव के एक बूढ़े आदमी, नारायण को काम पर लगाया। नारायण स्वामी सत्संगी से बहुत प्रभावित था। वह एकदम अँगूठाछाप था,

लेकिन बहुत ही नेक और ईमानदार आदमी था। अब वह नहीं रहा, लेकिन मुझे उसकी याद आती है।

रिखिया के रूपान्तरण का बीज

एक दिन उसने स्वामी सत्संगी को अपनी छोटी-सी झोंपड़ी में आमंत्रित किया। जब स्वामी सत्संगी वहाँ से लौटी तो एकदम भौंचक्की थी। वह पश्चिमी पाँच-सितारा संस्कृति की संतान है, उसका कभी हिन्दुस्तान के देहातों से पाला नहीं पड़ा। फियेट या फोर्ड मोटरगाड़ियों की उसे पूरी जानकारी थी, लेकिन ग्रामीण जीवन का बिल्कुल भी अंदाज नहीं था। और जब उसके घर से आई तो लगा जैसे सदमे में है।

मैंने पूछा, 'क्या हुआ?' उसने कहा, 'ये लोग ऐसे कैसे रह सकते हैं?' मैंने जवाब दिया, 'करोड़ों हिन्दुस्तानी ऐसे ही रहते हैं।' उसने कहा, 'पर उस घर में खिड़की तक नहीं है। बस एक छोटा-सा कमरा है, और नारायण वहाँ अपनी बीवी, बेटा-बेटी, बहू, पोते-पोतियों, बकरियों और मुर्गियों, सब के साथ रहता है।' मैंने कहा, 'हिन्दुस्तान के गाँवों में सभी ऐसे ही तो रहते हैं। लाखों-करोड़ों की संख्या में लोग ऐसा जीवन जीते हैं। मैं जानता हूँ क्योंकि बचपन में मैं भी अल्मोड़ा जिले के गाँवों में ऐसे ही रहा करता था। वह छोटा-सा कमरा एक पूरे परिवार के लिए जहान के बराबर होता है।'

'नहीं, यह बात मुझे हजम नहीं होती,' वह बोली, 'मैं उसके लिए एक ढंग का घर बनवाऊँगी।' मैंने कहा, 'क्या फालतू बात करती हो! तुम ऐसे कितने घर बनवा सकती हो? तुम्हारे पास करोड़ों रुपये हों, तो भी कम पड़ जाएँगे।'

खैर, कुछ घर बनवाने के बाद उसे मेरी बात समझ में आई कि यह कितना मुश्किल काम है। तब उसने रिखिया के आसपास के गाँववालों को ठेला, रिक्शा और ऑटो-रिक्शा देना शुरू किया। यह एक अच्छी योजनी थी, इससे वे लोग अपने और अपने परिवार का पेट पालने लायक कुछ पैसे कमा लेते थे। फिर उसने गाँव की महिलाओं, बच्चों, बूढों और बीमारों को कपड़े और कम्बल देने शुरू किये। मैंने इसे स्वीकार नहीं किया। मैं कहता था, 'अगर तुम इन लोगों को गरीब ही रखना चाहती हो, तो जरूर खैरात करो। इन्हें मुफ्त का खाना दो, मुफ्त के घर दो। तुम्हारा नाम भले ही रौशन हो जाए, लेकिन ये गरीब-के-गरीब ही रहेंगे। पता लगाओ कि गरीबी दूर करने का कारगर उपाय क्या है। आखिर तुम सूरज तो हो नहीं, बस एक छोटा-सा दीया ही जला सकती हो।'

अंत में उसने मेरे आगे घुटने टेक दिये। मैंने कहा, 'सुनो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि क्या करना चाहिए। मकान बनाना, कपड़े बाँटना, ठेला-रिक्शा देना, यह सब तमाशा किसी को फायदा पहुँचाने वाला नहीं। सब गहरे गर्त में जा गिरेंगे।' आप सब मुझसे सहमत होंगे कि दान दरिद्रता की जननी है।

सकारात्मक परिवर्तन

तब एक दिन पास के नवाडीह गाँव से एक छोटी-सी लड़की आई और बोली, 'स्वामीजी, मैं अँग्रेजी सीखना चाहती हूँ।' मैंने स्वामी सत्संगी से कहा, 'देखो, यह तुम्हारा राजमार्ग है – अँग्रेजी।'

स्वामी सत्संगी ने उस एक लड़की से शुरुआत की और अब आप लोग खुद देख सकते हो कि उनकी संख्या कितनी हो गई है। अँग्रेजी सीखने की जबरदस्त माँग है। आए दिन गाँववाले स्वामी सत्संगी के पास आकर अनुरोध करते हैं कि उनकी बच्चियों को भी अँग्रेजी क्लास में भर्ती कर लिया जाए। जब उसने लड़कियों से पूछा कि वे क्या सीखना चाहती हैं तो उन्होंने हिन्दी या संस्कृत नहीं, अँग्रेजी कहा।



समृद्धि की वृद्धि

तब से यहाँ एक ठोस परिवर्तन आया है। इस पंचायत में अब ऐसा कोई परिवार नहीं जिसे भूखे सोना पड़ता है। इस पंचायत में ऐसा कोई बच्चा नहीं जिसे एकाध महीने में नये कपड़े नहीं मिलते। हर पर्व और त्यौहार पर, चाहे वह होली हो, या दिवाली, दशहरा, नवरात्रि या गुरु पूर्णिमा, हम उन्हें सुन्दर कपड़े प्रसाद में देते हैं। हमारे पास हमेशा वस्त्रों का भण्डार लगा रहता है।

जिस पंचायत के बच्चों को साल में पाँच-सात नईं, सुन्दर पोशाकें मिलती हों, उन बच्चों को तुम क्या होगे? फटीचर? गरीब? निम्न वर्ग? मध्यम वर्ग? उच्च वर्ग? इन्हें हम किस श्रेणी में रखें? ये बच्चे खुश हैं और इनकी समृद्धि धीरे-धीरे इनके समाज में फैल रही है। समृद्धि हमेशा धीरे-धीरे बढ़नी चाहिए, इससे व्यक्ति अंकुश में रहता है। अगर धन-समृद्धि सुनामी की तरह आ जाए, तो वह तुम्हें बहा ले जाएगी। तुम अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख पाओगे।

अब इन बच्चों की आसपास के स्कूलों में पूरी हाजिरी रहती है। पढ़ने-लिखने में इतनी रुचि हो गई है इनकी! जब हम यहाँ आए थे, सभी स्कूल सूने-से दिखलाई देते थे। शायद ही कोई विद्यार्थी नजर आता था। अब वहाँ बच्चों की भरमार है, और स्थानीय प्रशासन ने भी उनके लिए अच्छे क्लासरूम बना दिये हैं। पढ़ाई-लिखाई की ओर बच्चों का इतना रुझान हो गया है कि हमारी पंचायत में एक प्राइवेट स्कूल भी खुल गया है, जहाँ माँ-बाप तीस रुपये महीने देकर अपने बच्चों को भेजते हैं। इसे पता चलता है कि वे अपने बच्चों की शिक्षा पर कितना ध्यान दे रहे हैं। सरकार को उन्हें यह समझाने की जरूरत नहीं, वे खुद शिक्षा के महत्त्व को समझ गए हैं।

पिछले साल हमने कन्याओं के लिए कम्प्यूटर प्रशिक्षण शुरू किया। हमने उन कन्याओं को चुना जो अँग्रेजी क्लास में अच्छा कर रही हैं। उन्होंने कम्प्यूटर चलाना इतनी जल्दी सीख लिया कि अब वे छोटे बच्चों को सिखाने के लिए तैयार हैं। और मेरे शुभचिन्तकों ने मुझे आश्वासन दिया है कि जितने चाहूँ उतने कम्प्यूटर देने को वे तैयार हैं। मुझे क्या चाहिए? अगर मुझे डेढ-दो सौ कम्प्यूटर मिल जाएँ, तो इस पंचायत के सैकड़ों बच्चे कम्प्यूटर चलाना सीख लेंगे। जहाँ तक सिखाने वालों का सवाल है, वहाँ कोई समस्या नहीं, क्योंकि आश्रम का हर गेरुधारी संन्यासी कम्प्यूटर चलाना जानता है। आध्यात्मिक जीवन का ही यह प्रभाव है उनपर। यह इस बात का लक्षण है कि उनकी कुण्डलिनी जाग रही है!

क्रिसमस

25 दिसम्बर 2005



क्राइस्ट का जन्म बेथ्लेहेम में हुआ था। उन्होंने रोगियों को आरोग्य, अंधों को आँखें और जनसाधारण को आध्यात्मिक शिक्षा दी, लेकिन अंत में उन्हें सूली पर लटकाया गया। इस कहानी को हर कोई जानता है, दुहराने की जरूरत नहीं। लेकिन जिस चीज को जानने की आवश्यकता है, वह उस सच्चाई की है, जिसे इतिहास के सबसे बड़े षड्यन्त्र ने दफना दिया है।

पिछली शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में पाश्चात्य देशों, विशेषकर जर्मनी के पर्यटक, इस्रायल के प्रसिद्ध 'डेड सी' इलाके की पहाड़ियों, गुफाओं और कब्रिस्तानों में खोजबीन करने जाया करते थे। अपनी खोजबीन के दौरान उनकी भेंट कुछ गड़ेरियों से हुई जिन्होंने उन्हें कुछ थैलियाँ बेच दीं। इन थैलियों में बहुत पुराने कागज़ात थे, जो आज 'डेड सी स्क्रोल्स' के नाम से

विख्यात हैं। पर्यटकों को इतना तो मालूम चल गया कि ये पुराने कागज़ात महत्त्वपूर्ण हैं। जर्मनी लौटकर उन्होंने इन्हें कुछ संग्रहालयों को बेच दिया।

उन संग्रहालयों ने इन दस्तावेज़ों को पढ़ने और अनुवाद करने का काम शुरू किया। कुछ ही सालों में सारी दुनिया को इन अद्भुत पाण्डुलिपियों और इनमें छिपे तथ्यों के बारे में पता चल गया। इनके अनुवाद और प्रकाशन से यह तथ्य उजागर हुआ कि आज से लगभग उन्नीस सौ साल पहले डेड सी के तट पर साधुओं-तपस्वियों का एक सम्प्रदाय रहा करता है। एसेनीज़ नाम से जाने वाले इस सम्प्रदाय के सदस्य संन्यासियों की तरह रहा करते थे।

एसेनीज़ सम्प्रदाय के संन्यासी मठों में एकान्तिक जीवन बिताया करते थे। सम्प्रदाय में केवल पुरुष थे, महिलाएँ नहीं। ब्रह्मचर्य आदि यम-नियमों का पालन करते हुए वे संन्यासी एक कठोर, नैतिक जीवन बिताते थे। इन दस्तावेज़ों से जो पहली आश्‍चर्यजनक बात सामने आई, वह यह थी कि जीसस इन मठों में अक्सर आया करते थे। अपने बचपन के कई साल उन्होंने वहाँ बिताए। ग्यारह से पन्द्रह साल की उम्र तक वे वहीं रहते थे और वहाँ के वरिष्ठ संन्यासियों से अध्यात्म सम्बन्धी प्रश्‍न किया करते थे। एसेनीज़ संन्यासियों ने जीसस को बहुत-सी चीजें सिखाईं, लेकिन वे सब सैद्धान्तिक थीं। जब जीसस ने उनका व्यावहारिक पक्ष सीखने की इच्छा व्यक्त की, तो उन्होंने कहा, 'देखो बेटा, इसके लिए तुम्हें भारत जाना होगा।'

जीसस कुछ सौदागरों के साथ भारत की ओर निकल पड़े। भारत पहुँचकर वे लद्दाख के हेमिस मठ में रहे। इस तथ्य का पता कुछ जर्मन और मुस्लिम प्रोफेसरों को तब लगा, जब वे उस मठ में गए और वहाँ के अभिलेखों का अध्ययन किया। उन प्रोफेसरों के अध्ययन के निष्कर्ष पुस्तक रूप में प्रकाशित किए गए हैं और बाजार में उपलब्ध हैं। हेमिस मठ में जीसस लम्बे समय तक रहे। उस मठ में बौद्ध भिक्षुक रहा करते थे। जीसस के अद्भुत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने जीसस को बुद्ध का एक पुनरावतार मान लिया। ऐसे कई शिलालेख और चित्र हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं। शिलाओं पर खुदे इन चित्रों में बुद्ध के प्राय: सभी अवतारों को बैठे हुए दर्शाया गया है। सभी के सर पर बौद्ध शैली में जटा बँधी है। लेकिन बुद्ध के एक अवतार को खड़ा दिखाया गया है। और उसके लम्बे, लहराते बाल हैं। वही जीसस है, बुद्ध का बाइसवाँ अवतार। हेमिस के उन बौद्ध भिक्षुओं और विद्वानों से जीसस ने धर्म, सदाचार और आध्यात्मिक कर्त्तव्यों के बारे में सीखा। यही बौद्ध मत के

आधार हैं। बौद्ध मत धर्म के सिद्धान्तों पर आधारित है, और तुम्हें यही चीज जीसस के प्रसिद्ध उपदेश, 'सर्मन ऑन दि माउण्ट' में मिलेगी।

लद्दाख के बाद जीसस काशी आए। उस समय भारत पर शक जाति का सम्राट् शालिवाहन शासन किया करता था। यह वही शालिवाहन है जिसके नाम पर आज भी देशभर में शक सम्वत् नाम का कैलेंडर चलता है। इस कैलेंडर के अनुसार हम शक शासन के 1927वें साल में हैं। सम्राट् शालिवाहन ने 1927 साल पहले भारत की राजगद्दी सम्भाली और उस उपलक्ष्य में अपने नाम का सम्वत् चलाया।

भविष्य पुराण में इस बात का उल्लेख मिलता है कि भारत के उस प्रसिद्ध सम्राट् की काशी में जीसस से भेंट हुई थी। जीसस ने सम्राट् शालिवाहन को अपना परिचय 'ईश-पुत्र' के रूप में दिया। शालिवाहन ने भी जीसस को ईश-पुत्र कहकर ही सम्बोधित किया। अगर तुम यह प्रमाण देखना चाहते हो, तो तुम्हें भविष्य पुराण पढ़ना चाहिए।

पुराण भारत का इतिहास बतलाते हैं। कथा-कहानियों के रूप में। पुराण का मतलब पुराने समय की जानकारी। हमारे सभी पुराण किसी-न-किसी ऐतिहासिक काल के अभिलेख हैं, रिकॉर्ड हैं। इतिहास कालान्तर में इतिहास नहीं रहता। उसे रहना भी नहीं चाहिए। इतिहास दंतकथा बनता है और दंतकथा पुराण। इतिहास को हमेशा कथा का रूप दिया जाना चाहिए ताकि बाद में राजनैतिक समस्याएँ पैदा न हों। अन्यथा शिव, ब्रह्मा, विष्णु और शक्ति के अनुयायी हमेशा आपस में लड़ते रहेंगे। आज हम एक ही मंदिर में शिव, शक्ति और नारायण को पूजते हैं। कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं, क्योंकि उनके इतिहास को कथाओं का रूप दे दिया गया है।

भविष्य पुराण में इस बात का प्रमाण है कि क्राइस्ट आज से 1927 साल पहले काशी में मौजूद थे। ऐसे में एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है – क्या उनका जन्म वाकई दो हजार साल पहले हुआ था? अगर उनकी सम्राट् शालिवाहन से वाकई भेंट हुई, तो अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका जन्म 2000 साल पहले के बजाय, 1950 या 1957 साल पहले हुआ होगा। यह उस तारीख से पचास साल बाद है, जो सामान्य रूप से क्राइस्ट की जन्मतिथि मानी जाती है।

इन तथ्यों को उचित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इन्हें छिपाने की साजिश क्यों? ऐसी साजिशों के पीछे हमेशा राजनैतिक

कारण रहता है। कृष्ण राधा से प्रेम करते थे। शिव जी के दो विवाह हुए। ठीक है, कोई समस्या नहीं। भगवान हमेशा भगवान ही रहते हैं, चाहे जो कुछ भी करें। बिजली हमेशा बिजली ही रहती है, उसे चाहे हीटर में प्रवाहित किया जाए या कूलर में। बिजली हीटर या कूलर नहीं बन जाती, वह बिजली ही रहती है। इसी तरह भगवान भी हमेशा भगवान ही रहते हैं, चाहे वे राधा के पास जाएँ या गौरी के पास या लक्ष्मी के पास। लेकिन कुछ लोगों को ये बातें हजम नहीं होतीं।

काशी के बाद जीसस पुरी गए, जहाँ उन्होंने भगवान जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की रथयात्रा में भाग लिया। पुरी में, जो उस समय वैष्णव मत का गढ़ था, और आज भी है, उन्हें भक्ति की शिक्षा प्राप्त हुई। यही भक्ति आज ईसाई धर्म की आधारशिला है। ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण ईसाई मत का मौलिक सिद्धान्त है, जिसका परिचय जीसस को पुरी में प्राप्त हुआ।

पुरी से जीसस दक्षिण भारत के कावेरी क्षेत्र गए। उस समय वह मंत्र, तंत्र और अन्य रहस्मयी विद्याओं का स्थान था। कुल मिलाकर जीसस भारत में बारह साल रहे। ये सब बातें अभी संक्षेप में बता रहा हूँ। तुम चाहो तो इस विषय पर विस्तार से भी चर्चा कर सकता हूँ, क्योंकि जो कुछ मैं कह रहा हूँ, उसके लिखित प्रमाण हैं मेरे पास। मैं कभी स्थिर संन्यासी नहीं रहा। दुनियाभर में खूब घूमा हूँ। दुनिया के हर शहर और नगर की जानकारी तुम्हें दे सकता हूँ। मैं भूगोल का, इतिहास का जीता-जागता भण्डार हूँ, क्योंकि जीवनभर मैंने घूमने और सीखने के अलावा कुछ नहीं किया। न कभी आश्रम चलाए, न कभी रुपये-पैसे गिने। मैं केवल दुनियाभर में घूमा और दुनिया के बारे में जितना सीख सकता था, सीखा। यही मेरा जीवन रहा, और आज भी ऐसा ही है।

मैं बतला रहा था कि जीसस भारत में बारह साल रहे। उन्होंने दक्षिण में मंत्र-तंत्र, जगन्नाथ पुरी में वैष्णव विचारधारा, काशी में अद्वैत वेदान्त और लद्दाख में भिक्षुओं से बौद्ध धर्म सीखा। ये सभी प्रभाव उनकी जीवनशैली और शिक्षाओं में साफ दिखलाई देते हैं। अगर तुम ईसाई धर्म की मान्यताओं और सिद्धान्तों का खुले दिमाग से अध्ययन करोगे तो तुम्हें ये प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई देंगे।

यह सब कहने का अभिप्राय यही है कि क्राइस्ट कोई पराये पैगम्बर नहीं, भारत के अपने हैं। भारत ही क्रिश्चियेनिटी की जन्मभूमि है। मेरे शब्दों पर

गौर करना – क्रिस्चियेनिटी की वास्तविक जन्मभूमि भारत है। आज जब हम जीसस का जन्मदिन मना रहे हैं, मैं इसी बात को उजागर करना चाहता हूँ।

बाइबल में इन बारह-तेरह सालों का कोई उल्लेख नहीं मिलता, जिन्हें क्राइस्ट ने भारत में बिताया था। वहाँ केवल इतना कहा गया है कि उस दौरान वे येरुसलम में नहीं थे। पर वे कहाँ थे, इसका कोई ज़िक्र नहीं। आखिर वे तेरह साल कहाँ थे? इसका जवाब देने को कोई तैयार नहीं। जबकि सच तो यह है कि बारह साल वे भारत में थे। जब वे इस्रायल लौटे, तो वहाँ के यहूदी पुजारियों ने आपस में कहना शुरू किया, 'यह नवयुवक कौन है? हमने इसे पहले तो कभी नहीं देखा। देखने में तो यहूदी दिखता है, कहाँ से आया है यह? कोई कहता है यह जोसेफ का बेटा है। अच्छा, अब समझ में आया कौन है यह।' जब जीसस तीस साल की उम्र में भारत से इस्रायल लौटे, तब लोग उनके बारे में इस तरह की बातें किया करते थे।

इस्रायल लौटने के बाद जीसस ने छः वर्षों तक धर्म-प्रचार का कार्य किया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इस दौरान उन्होंने अनेक रोगियों को रोगमुक्त किया, दृष्टिहीनों को दृष्टि प्रदान की, लेज़रस नामक मृत व्यक्ति को पुनर्जीवित कर दिया और इस तरह के अनेक चमत्कार किये, जिनके बारे में प्रायः सब लोग जानते हैं। अपने अद्भुत व्यक्तित्व के बावजूद उन्हें एक मामूली मुजरिम की तरह सूली पर लटका दिया गया। हाँ, यह सच है और तुम जानते हो।

जीवन भर बुद्ध ने वेदों की आलोचना की। वेद तो भारतीय दर्शन, धर्म और सिद्धान्त के आधार हैं न! भले ही बुद्ध ने लोगों के विश्वास के खिलाफ बात की, लेकिन उन्हें प्रताड़ित नहीं, पूजा गया। भारतीयों की यह परम्परा नहीं कि नए विचार देने वाले लोगों को सूली पर चढ़ाओ। हम उस विचार से भले ही सहमत न हों, लेकिन हमें विचार देने वाले को सूली पर लटकाने का कोई अधिकार नहीं। भारतीय लोग इस तरह से सोचते हैं।

जीसस ने यहूदियों की प्रचलित प्रणालियों और अंधविश्वासों की खुलेआम आलोचना की, और उन्हें एक सामान्य अपराधी की तरह प्रताड़ित किया गया। रोमन अदालत ने उन्हें मौत की सजा सुना दी। उन्हें खुद येरुसलम की गलियों से अपनी भारी-भरकम सूली को घसीटकर ले जाना पड़ा। रास्ते भर लोग उनकी खिल्ली उड़ाते रहे। और अंत में उनके शरीर में कीलें ठोंककर सूली पर टाँग दिया गया। इतना सब झेलने के बाद उन्हें सूली से उतारा

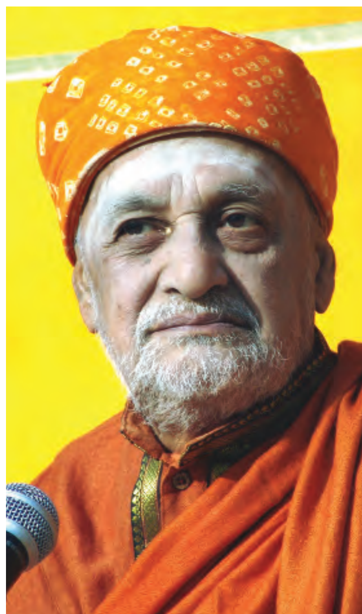
गया और मृत समझकर उन्हें कब्र में दफना दिया गया। लेकिन वे सूली पर मरे नहीं। वे जीवित थे, और बहुत काल तक जीवित रहे। हालाँकि वे बहुत कमजोर हो गए थे, उनकी शक्ति एकदम क्षीण हो चुकी थी, फिर भी वे जीवित रहे और इसका प्रमाण डेड सी स्क्रोल्स में मिलता है।

यह कहानी मैंने कहाँ से शुरू की, याद है? डेड सी स्क्रोल्स से, जिन्हें जॉर्डन के गड़ेरियों ने जर्मन पर्यटकों को बेचा था और जिनका जर्मनी में अनुवाद हुआ। उस अनुवाद से एसेनीज़ मठ में जीसस की उपस्थिति ज्ञात हुई। एसेनीज़ मठ में जीसस की उपस्थिति का उल्लेख दस्तावेज़ों में दो बार आता है। पहली बार उनके बचपन में और दूसरी बार, उनके क्रूसारोपण के बाद। इससे साफ ज़ाहिर है कि सूली पर उनकी मौत नहीं हुई। सूली से उतारे जाने के बाद क्राइस्ट को इलाज के लिए एसेनीज़ मठ में लाया गया। जरा सोचो, शरीर पर कीलों के घावों और सूली पर घण्टों तक लटकाये जाने के कारण शरीर को कितनी क्षति हुई होगी।

फिर उस कफन के कपड़े का प्रमाण भी है, जिसमें जीसस के शरीर को लपेटा गया और कब्र में लिटाया गया। 'श्राउड ऑफ तुरिन' नाम से विख्यात यह कफन, उस प्राचीन घटना का जीवन्त प्रमाण है, जिसे आज तक सम्भालकर रखा गया है। विशेषज्ञों ने उस कफन पर लगे खून के धब्बों का परीक्षण किया है। इन परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकला कि जिस खून से ये दाग पड़े, वह एक मृतक का नहीं, जीवित व्यक्ति का था।

जीसस सूली पर मरे नहीं, बल्कि जीवित रहे, इस बात के ये दो प्रमुख प्रमाण हैं। एक ऐतिहासिक और दूसरा वैज्ञानिक। तुम भले ही इन प्रमाणों और निष्कर्षों से सहमत न हो, लेकिन ये ऐसे तथ्य हैं जिन्हें इतिहास पर शोध करने वाले विद्वान् प्रस्तुत कर रहे हैं। जीसस को प्राथमिक उपचार के बाद कब्र से निकाल लिया गया और अगले दिन यह सनसनीखेज़ खबर फैल गई कि जीसस ने सशरीर स्वर्गारोहण किया है। इसे एक महान् चमत्कार समझा गया। जबकि वास्तविकता यह थी कि उन्हें डेड सी तट पर स्थित उन संन्यासियों के मठ में ले जाया गया, जिनके साथ वे बचपन में रहा करते थे। वहाँ औषधियों और जड़ी-बूटियों से उनका इलाज किया गया। अनवरत रक्तस्राव के कारण उनका शरीर बहुत कमजोर हो गया था।

क्रूसारोपण के बाद जीसस अपनी खोई हुई शारीरिक शक्ति और क्षमता दुबारा पा न सके। वे सूली पर तीन दिन लटके रहे, उनके हाथों-पैरों में



कीलें ठोकी गईं, बगल में भाला घोंपा गया, सिर पर काँटों का ताज पहनाया गया। इसके बावजूद वे जीवित रहे, यह किसी चमत्कार से कम है क्या! इस कठिन परीक्षा से गुजरने के बाद वे कहाँ गए? वापस इस्रायल? ना बाबा ना! फिर कहाँ जाते? रोम? नहीं, नहीं। रोम तो एक आक्रामक, लड़ाकू राज्य था, जो अपने पतन की ओर अग्रसर था। वहाँ कौन जाता? जब किसी साम्राज्य का पतन चल रहा होता है, तभी वह आक्रामक रवैया अपनाता है, लड़ाइयाँ छेड़ता है। इस सनातन सत्य को हमेशा याद रखना। अगर कोई राष्ट्र पतन की ओर अग्रसर न हो, तो वह लड़ाकू और आक्रमणकारी कभी नहीं होगा।

इसलिए जीसस रोम नहीं गए। बल्कि अपनी बूढ़ी माँ के साथ भारत के श्रीनगर क्षेत्र में चले आए। जीसस इस समय अड़तीस-चालीस साल के थे। इस्रायल में उनका धर्म-प्रचार का कार्य केवल छः साल चला। डेड सी से वे इराक आए और वहाँ से श्रीनगर, जहाँ उन्होंने अपना शेष जीवन एकान्त में बिताया, क्योंकि जैसा मैंने कहा, क्रूसारोपण के बाद उनका शरीर दुबारा मजबूत नहीं हो पाया। वे बहुत कमजोर हो गए थे।

इस बात के भी प्रमाण हैं कि उनकी मृत्य यहीं भारत में हुई, जिसके बाद उन्हें कब्र में दफनाया गया। वह कब्र काश्मीर में है। यह एक खुला रहस्य है, बहुत-से लोग इसके बारे में जानते हैं। इतिहास भी इस बात को मानता है। इस विषय पर किताबें हैं, फिल्में हैं। जीसस की कब्र पर जो नाम लिखा है वह है 'ईसु आसफ'। एक और नाम जो लिखा है, 'नबी आसफ' है।

इस कब्र का रखवाला एक पुश्तैनी मुसलमान है। उसके पास भी एक पुराना दस्तावेज़ रखा है। ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, इंग्लैण्ड और अमेरिका के शोधकर्त्ता वहाँ गए हैं और उस दस्तावेज़ की फोटो खींचने के लिए ढेर सारे पैसे देने की पेशकश की है। लेकिन वह दस्तावेज़ दिखलाने के लिए तैयार

नहीं। मैं खुद ऐसे कई विद्वानों को जानता हूँ जिन्होंने जीसस की कब्र, कफन और उस दस्तावेज़ को देखा है। एक और चीज, यह कब्र यहूदी शैली में है। याद रखना, जीसस क्राइस्ट ईसाई नहीं थे। वे यहूदी थे। उनका जीवन यहूदियों की तरह था और उनकी कब्र भी यहूदियों की तरह है। उनकी माँ की मृत्यु भी भारत में हुई। श्रीनगर के पास एक कब्र है जिसे 'मरियम की मज़ार' कहते हैं। मैंने यह कब्र देखी है। अब तो यह बहुत टूट-फूट गई है।

यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि मेरी मैग्डलीन का क्या हुआ। वह यहूदी थी, मगर जैसी 'दि लास्ट सपर' नामक तस्वीर में दिखलाई गई है, वैसी नहीं थी। वह गोरी नहीं, काली थी। तुमने 'दि डा विन्ची कोड' नाम की किताब के बारे में शायद सुना होगा। लियोनार्डो डा विन्ची एक इटालियन चित्रकार था, और उसने अपनी सबसे प्रसिद्ध तस्वीर, 'दि लास्ट सपर' मिलान नगर की एक चर्च की दीवार पर बनाई। उस तस्वीर में जीसस के सभी प्रमुख शिष्यों का संकेत किया गया है। जीसस को लाल कमीज़ और नीले उत्तरीय के साथ दर्शाया गया है। उनकी दाहिनी ओर मैग्डलीन है, जिसने नीली कमीज़ और लाल उत्तरीय पहना है। जीसस के रंगों से ठीक उल्टा। उसके बगल में पीटर है, जिसका बायाँ हाथ मैग्डलीन की गर्दन पर है, और दायें हाथ में छुरा है। मानो वह उसकी गर्दन काटना चाह रहा है। जीसस की बायीं ओर जॉन है। उसकी तर्जनी ऊपर की ओर उठी हुई है। इसका क्या मतलब हुआ? अगर मेरा कोई शिष्य मुझे इस तरह उँगली दिखाए तो उसका क्या अर्थ निकलेगा? विरोध, अवज्ञा, क्रोध, यही न! कोई भी शिष्य अपने गुरु के सामने ऐसा इशारा हरगिज़ नहीं कर सकता। लेकिन जॉन ने किया। अपने गुरु, अपने उद्धारक जीसस के सामने। लियोनार्डो डा विन्ची की तस्वीर में जीसस के अंतिम भोज को इसी तरह दर्शाया गया है। विचित्र बात यह है कि अंतिम भोज के लिए सजी मेज़ खाली है। न ब्रेड है, न मदिरा है, खाने-पीने के लिए कुछ भी नहीं है। बिना भोजन के भोज कैसा? इसका क्या अर्थ निकला?

प्रचलित दंतकथाओं के अनुसार जीसस के क्रूसारोपण के बाद मैग्डलीन फ्रांस चली गई। वहाँ उसने एक बच्ची को जन्म दिया, जो बड़ी होने पर दक्षिण फ्रांस के एक राजघराने में ब्याही गई। इस राजघराने ने सौ साल से अधिक वहाँ पर राज किया। कथार नामक ये लोग अपने आपको जीसस के वंशज कहा करते थे। यह इतिहास की बात बतला रहा हूँ। यूरोप के अंधकार-युग में इन्हें बहुत सताया गया। इतिहास गवाह है कि इस सम्प्रदाय के लाखों ईसाइयों

को दक्षिण फ्रांस में मौत के घाट उतारा गया। क्यों? इसलिए कि वे अपने आपको जीसस के वंशज कहा करते थे।

'दि डा विन्ची कोड' पर अब एक फिल्म भी बन चुकी है। किताब और फिल्म, दोनों बहुत लोकप्रिय हुए हैं। बेशक वह कहानी के रूप में है, लेकिन जैसे मैंने पहले कहा, इतिहास को अगर राजनैतिक हस्तक्षेपों से बचाना है, तो उसे कहानी का रूप देना ही होगा।

यह सब बतलाने का तात्पर्य यह कि जिनका जन्म तुम लोगों ने कल रात बड़े हर्षोल्लास के साथ नाचते-गाते मनाया, उनका इस्रायल से ज्यादा हिन्दुस्तान से सम्बन्ध है। ईसाई धर्म की बजाय भारत की सनातन संस्कृति और धर्म से जीसस का ज्यादा गहरा सम्बन्ध है। न तो वे खुद ईसाई थे, न ही उन्होंने ईसाई धर्म का प्रचार किया। यह बात याद रखना। ईसाई धर्म तो बहुत बाद में आया।

जीसस के क्रूसारोपण के तीस साल बाद उनका एक शिष्य, थॉमस भारत के पश्चिमी तट पर पहुँचा। वहाँ के गोवा प्रान्त में उसने 'हाउस ऑफ गॉड' की स्थापना की। यह दुनिया की सबसे पुरानी चर्च है। वैटिकन चर्च से सात साल पुरानी। लेकिन थॉमस ने इसे चर्च नहीं, 'हाउस ऑफ गॉड' कहा। हाउस ऑफ गॉड का मतलब देवता का घर, देवघर। जिस स्थान पर यह आश्रम बना है, उसका नाम भी देवघर ही है।

थॉमस ने 'हाउस ऑफ गॉड' की स्थापना की, 'चर्च ऑफ गॉड' की नहीं। यह घटना क्रूसारोपण के तीस साल बाद और रोम में पीटर द्वारा वैटिकन चर्च की स्थापना से सात साल पहले की है। बाकी कहानी तुम्हें खुद मालूम करनी होगी। मैं नहीं बताऊँगा क्योंकि मेरा वह उद्देश्य नहीं। मेरा उद्देश्य एकदम स्पष्ट है। भारतभूमि ईसाई धर्म की जन्मभूमि है। ईसाई धर्म का जन्म, उसका पालन-पोषण येरुसलम, बेथ्लेहम या इस्रायल में नहीं हुआ। वहाँ तो जीसस का क्रूसारोपण हुआ। इस कहानी का सबसे दु:खद अंश वह विश्वासघात है जो जीसस के साथ वहाँ किया गया।

दूसरी ओर भारत को हमेशा ज्ञान, अध्यात्म और धर्म की जन्मभूमि समझा गया है। संन्यास और अध्यात्म के लिए भारत ही जाना पड़ता है। और नौकरी-धंधे के लिए अमेरिका। बात इतनी-सी है। अमेरिका धनवानों की भूमि है, और यह भगवानों की। आज इस पावन दिवस पर मेरे सत्संग का प्रयोजन सिर्फ इतना कहना रहा है कि जीसस भारत के अपने हैं, और भारत अपनों को कभी नहीं भूलता। मैं धर्म-परिवर्तन में बिल्कुल विश्वास नहीं रखता। जो ऐसा

करते हैं, वे राजनीति की सच्चाई जानते हैं, धर्म की नहीं। और जो अपना धर्म बदलते हैं, वे न धर्म की सच्चाई जानते हैं, न ही राजनीति की।

मैं जब चाहूँ बाइबल पढ़ सकता हूँ। मुझे कौन रोक सकता है? ऐसा नहीं कि मुझे सिर्फ रामायण या श्रीमद् भागवत ही पढ़ना चाहिए। अपनी मनपसंद चीज को पढ़ने से मुझे कोई नहीं रोक सकता। पर मेरा नाम स्वामी सत्यानन्द है, मैं जोसेफ या साइमन नहीं बनूँगा। अगर तुम ईसाई हो और तुम्हें शिवजी के मंदिर बुलाया जाए तो जरूर जाओ। क्या मंदिर केवल इसलिए नहीं जाओगे कि तुम ईसाई हो? हम किस तरह के धर्म की, किस तरह के सत्य की शिक्षा पा रहे हैं? ईश्वर एक हैं। लेकिन यह 'एक' गणित वाला एक नहीं है। यह 'एक' असीमता का, पूर्णता का प्रतीक है। एक में एक जोड़ने से एक ही रहता है। एक से एक घटाने पर भी एक ही रहता है। इसी सत्य को वेदों ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

हमारे कन्या-बटुकों ने इस शुभ अवसर पर सबेरे-सबेरे जीसस का अभिवादन किया है। हमने उन्हें 'गुड मॉर्निंग' नहीं कहा, क्योंकि यह बड़ा नीरस अभिवादन है। हमने उनसे 'हरि: ॐ क्रिस्तो' कहा!

मेरे ख्याल से मैंने आप लोगों को जीसस के बारे में वह सारी नई जानकारी दे दी है, जिसे अनावृत करने के लिए अनेक अंतर्राष्ट्रीय शोधकर्त्ता बड़ी मेहनत कर रहे हैं। मैंने उनकी शोध को आप लोगों के सामने रखने का प्रयास इसलिए किया है कि जीसस को इतिहास की दृष्टि से भारत से जोड़ा जा सके, आप सब लोगों से जोड़ा जा सके। दुनियाभर से जो लोग भारत आते हैं उन्हें याद रखना चाहिए कि यह उनका देवघर है। भारत भगवान का घर है। जब भी तुम जीसस को याद करना चाहो, जब भी अपने आपको आध्यात्मिक शक्ति से ऊर्जान्वित करना चाहो, तो सीधे भारत आ जाओ।

भारत अद्वैत वेदान्त जैसा पारम्परिक दर्शन प्रस्तुत करता है, जिसमें कहा जाता है – *अहं ब्रह्मास्मि* – मैं और मेरे पिता एक हैं। जीसस ने भी यही कहा था। भारत भक्ति की भी शिक्षा देता है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविडं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

'तुम ही मेरे पिता हो, तुम ही मेरी माता हो, तुम ही मेरे सखा हो, तुम ही मेरे सब कुछ हो।' क्राइस्ट ने भी यही कहा था। फिर मंत्र और तंत्र भी है, जिसे उन्होंने यहाँ रहकर सीखा। आरोग्य के लिए मंत्र, शादी-ब्याह के लिए मंत्र, सम्मोहन के लिए मंत्र, यहाँ तक कि स्त्रियों का दिल जीतने के लिए भी मंत्र हैं हमारे यहाँ!

अब पाश्चात्य जगत् को भारत से यही सीखना होगा। अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए किस प्रकार दैवी शक्तियों को प्रसन्न किया जाए। जीसस ने इन सब चीजों के बारे में संकेत दिये हैं। आखिर जीसस सभी गुरुओं के गुरु हैं– *सर्वेषां गुरूणां गुरु:*। जीसस जगद्‌गुरु हैं। जीसस अवतार हैं। राम अवतार थे, कृष्ण अवतार थे, बुद्ध अवतार थे, और जीसस भी अवतार हैं।

अवतार का मतलब भगवान का वह स्वरूप जिसे तुम देख सको, अनुभव कर सको। कई लोग सोचते हैं, भगवान पैदा क्यों होते हैं? वे इसलिए पैदा होते हैं कि हमारी मदद कर सकें। हम उनके निराकार स्वरूप का अनुभव नहीं कर सकते। यह सम्भव नहीं कि मनुष्य का मन भगवान की निराकारता को समझ ले। तुम अपने मन को कहाँ टिकाओगे? तुम्हारा मन कहाँ ठहरेगा? भगवान तो निराकार हैं, उनका कोई रूप नहीं, कोई नाम नहीं, कोई स्थान नहीं, कोई रंग नहीं, कोई आकार नहीं। भगवान जानते हैं कि हमारे लिए उनके निराकार स्वरूप को समझना बहुत मुश्किल है। वे सोचते हैं, 'इस आदमी को बहुत कठिनाई हो रही है क्योंकि मैं निराकार हूँ। ठीक है भाई, मैं तुम्हारे लिए एक रूप तैयार कर देता हूँ। मैं राम के रूप में आता हूँ, उस रूप पर ध्यान करना।' राम का समय बीता तो वे कृष्ण रूप में आए। और पाश्चात्य लोगों के लिए? वे लोग तो भोग और ऐशो-आराम में रमे हुए हैं। उनके लिए वे क्राइस्ट के रूप में आए।

पश्चिम के रूढ़िवादी और कट्‌टरपंथी चिंतकों को राम और कृष्ण पसंद नहीं आए, क्योंकि वे शादी-शुदा थे। आखिर भगवान की शादी कैसे हो सकती है? स्त्री के संग रहना, यह उस समय अपवित्र माना जाता था। उन लोगों के लिए संभोग पाप था। शिव? वे तो असभ्य लोगों के देवता हैं, उनकी तो दो पत्नियाँ हैं। कृष्ण? अरे! उनकी तो कितनी प्रेमिकाएँ और पत्नियाँ हैं! लेकिन याद रखना, पवित्रता एक आदर्श है, यथार्थ नहीं। अच्छाई एक आदर्श है, वास्तविकता नहीं। अमरता एक आदर्श है, यथार्थ नहीं। यथार्थ तो वह है जो तुम अपने चारों ओर देखते हो। ठीक है, शिव की पूजा मत

करो क्योंकि उनकी दो पत्नियाँ हैं, राम की पूजा मत करो क्योंकि वे विवाहित हैं, कृष्ण की भी पूजा मत करो क्योंकि वे रंगीले मिज़ाज के हैं। अगर ये सब अवतार पवित्रता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते तो क्राइस्ट की पूजा करो। क्राइस्ट तो एकदम पवित्र थे न!

जब पाश्चात्य लोगों ने भगवान के ऐसे अवतार को देखा जो पवित्रता का प्रतिरूप था, उन्होंने राहत की साँस ली। उन लोगों को शुद्ध यूरेनियम चाहिए, जिससे परमाणु बम बन सके। इसी तरह उन्हें पूर्णतया शुद्ध भगवान चाहिए। प्यासे को ही पानी चाहिए न। जो प्यासा नहीं है वह तो पानी के बारे में सोचेगा तक नहीं। थका-हारा आदमी ही सोना चाहता है। अगर तुम थके नहीं हो, तो तुम सोना नहीं चाहोगे। इसी तरह एक अशुद्ध, अपवित्र मन ही पवित्र भगवान की कामना करता है। हाँ, यह सच्चाई है। हम हिन्दू लोगों को पवित्र भगवान नहीं चाहिए। हमें ऐसा भगवान चाहिए जो धर्म के अनुसार, मर्यादा के अनुसार जीवन जीये। राम ने धर्म के अनुसार जीवन जीया। मैं यहाँ किसी की आलोचना नहीं कर रहा हूँ, केवल तथ्यों को सही दृष्टि में प्रस्तुत कर रहा हूँ, क्योंकि हमारी दृष्टि में अक्सर दोष रहता है। हिन्दुस्तानी गरीब हैं, उनके पास पैसा नहीं। इसलिए वे हमेशा पैसे के पीछे भागते हैं। जहाँ भी वे जाते हैं, पैसा ही चाहते हैं, क्योंकि उनके पास वह चीज नहीं। पाश्चात्य लोगों के पास पैसे की कमी नहीं, इसलिए उन्हें पैसा नहीं, योग चाहिए।

मैं तुम लोगों के सामने ये सब तथ्य रख रहा हूँ ताकि तुम इनपर स्वतंत्र चिंतन कर सको। तुम क्यों कहते हो कि केवल पवित्र ईश्वर चाहिए? अगर क्राइस्ट का मैग्डलीन के साथ सम्बन्ध था, तो क्या इस वजह से वे पवित्र नहीं रहे? स्वामी सत्यानन्द कहता है कि नहीं, जीसस हमेशा जीसस रहे, हमेशा पवित्र रहे। बिजली हमेशा बिजली ही रहती है, वह हीटर या कूलर या पम्प नहीं बन जाती। इसी तरह भगवान भी भगवान ही रहते हैं, चाहे वे कुछ भी करें।

आज हम उस ऐतिहासिक महापुरुष को अपनी श्रद्धा निवेदित करते हैं, जो महात्मा बुद्ध के पाँच सौ साल बाद पैदा हुए। बचपन से ही उन्हें साधु-महात्माओं का संग मिला और वे डेड सी के तटस्थ मठों में रहे। फिर वे आध्यात्मिक ज्ञान के लिए भारत आए। सबसे पहले लद्दाख के हेमिस मठ गए, फिर वहाँ से काशी, पुरी और अंत में दक्षिण भारत गए। इसके बाद वे

इस्रायल लौटे, वहाँ अध्यात्म का प्रचार किया, उनपर मुकदमा हुआ, सूली पर लटकाए गए और फिर भारत वापस आकर आजीवन यहीं रहे। मरणोपरान्त उन्हें यहूदी रीति-रिवाजों के अनुसार यहीं दफना दिया गया।

अंत में यही बात याद रखना कि भारत ईसाई धर्म का उद्‌गम है। मैं चाहता हूँ कि तुम सब एक अच्छे ईसाई बनो। मैं शैव सम्प्रदाय का संन्यासी हूँ, लेकिन वैष्णव सम्प्रदाय के आराध्य, श्री राम का भक्त हूँ। मैं श्रीकृष्ण को भी पूजता हूँ, और हर साल शतचण्डी यज्ञ में देवी की भी आराधना करता हूँ। उसके बाद क्रिसमस के समय, क्राइस्ट कुटीर में क्राइस्ट की पूजा करता हूँ। यह कुटीर मैंने क्राइस्ट के लिए ही बनवाई है। अगर तुम ईसाई हो तो भी शिव मंदिर जाने में हर्ज ही क्या? राम या कृष्ण या देवी की पूजा करने में क्या नुकसान है? तुम ईसाई ही रहोगे, मैं हिन्दू ही रहूँगा। वह चीज नहीं बदलेगी। मैं तुम्हारा धर्म बदलने की कोशिश क्यों करूँ? नहीं, अगर तुम जेफरसन हो, तो जेफरसन ही रहोगे। अगर तुम डेविड हो तो डेविड ही रहोगे। अगर तुम्हें बपतिस्मा चाहिए तो शौक से लो। अगर तुम चाहते हो कि मरने के बाद तुम्हारे शरीर को चिता में जलाया जाए, तो अपने वसियतनामे में ऐसा लिख दो। अगर कब्र में दफनाए जाना चाहते हो, तो भी कोई समस्या नहीं। जहाँ तक जीसस, धर्म और अध्यात्म का सम्बन्ध है, ये छोटी-छोटी चीजें बिल्कुल मायने नहीं रखतीं। धर्म का केवल एक चीज से सम्बन्ध है, 'मैं यह शरीर नहीं, मैं यह मन नहीं, मैं यह प्राण नहीं, मैं यह अनुभव नहीं। मैं देदीप्यमान् प्रकाश हूँ, जो मेरे भीतर ही प्रतिष्ठित है। कहाँ? यह मुझे मालूम नहीं। यही मुझे खोजना है।'

मैं यह मकान नहीं हू। न मैं फर्श या दीवार हूँ। मैं स्वामी सत्यानन्द हूँ, इस मकान का मालिक। इस मकान को खोजने की बजाय मुझे खोजो। यह शरीर नौ दरवाजों का बंगला है। इस बंगले के भीतर आत्मा है, जो स्वयं प्रकाशमान् है। तुम्हें उसकी गहराई में उतरना है। वहाँ जाने का उपाय तुम्हें मालूम नहीं, इसके लिए तुम्हें तुम्हारी बाइबल या तुम्हारी रामायण या तुम्हारी गीता की जरूरत पड़ेगी। आखिर आत्मा तक कैसे पहुँचा जाए? कुछ लोग कहते हैं कि भीतर जाओ, लेकिन कैसे? आत्मा की खोज में भीतरी गहराइयों में उतरने का क्या मतलब? 'भीतर' का क्या अर्थ हुआ? तुम हर रोज रात को भीतर तो जाते ही हो, लेकिन वहाँ तुम्हारे हाथ क्या लगता है? केवल डरावने सपने न? नहीं, यह ऐसी चीज है जिसे तुम्हें खुद योगविद्या में सीखना होगा।

सत्संग

17 अक्टूबर 2006



बदलता रिखिया

अब रिखिया धीरे-धीरे इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर रहा है। यहाँ पी.सी.ओ, मोबाइल फोन, सैटेलाइट टी.वी., साइबर कैफे, इंटरनेट, मोटरगाड़ियाँ और दुकानें आ गई हैं। सुन्दर, मुस्कुराते बच्चे अपनी वर्दी पहने स्कूल जाते दिखलाई देते हैं। महिलाएँ साफ-सुथरी साड़ियों में, बूढ़े लोग गरम कपड़े पहने दिखाई देते हैं। याद है रिखिया की क्या हालत थी जब मैं यहाँ सन् 1989 में आया था? औरतों के पास तन ढकने लायक कपड़े नहीं थे! अगर तुम किसी गाँव-कस्बे में जाओ और वहाँ महिलाओं के पास पहनने लायक कपड़े न हों

तो इसका क्या मतलब? यही न, कि वे अभी तक किसी पुराने, पिछड़े युग में जी रहे हैं। यह उनकी बिगड़ी दशा की मात्र एक झलक थी।

जब स्वामी सत्संगी बगल के गाँव, अमरवा में नारायण के घर गई, तो बड़ी विचलित अवस्था में लौटी। नारायण यहाँ का एक बूढ़ा आदमी था जो अब नहीं रहा। उसका स्वामी सत्संगी के साथ बड़ा आत्मीय सम्बन्ध था। वह चाहता था कि स्वामी सत्संगी उसके घर पधारे। लेकिन उसके घर जाने के बाद स्वामी सत्संगी की सारी सोच, सारी मानसिकता बदल गई। वह सोचती रही कि नारायण और उसका परिवार उस फटीचर हालत में रह कैसे सकता है। मैंने स्वामी सत्संगी से कहा कि हिन्दुस्तान में ज्यादातर लोग ऐसे ही रहते हैं। लेकिन वह इस बात को स्वीकार नहीं कर सकी। वह मुझसे कहा करती, 'हमारे कुत्ते, भोलेनाथ का जीवन उन लोगों से बेहतर है।'

अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। आज यहाँ के बच्चे अँग्रेजी बोलते हैं, शुद्ध उच्चारण के साथ संस्कृत मंत्रों-स्तोत्रों का पाठ करते हैं, और इसके अलावा उनमें बहुत-सी अन्य प्रतिभाओं का विकास हुआ है। उनके हर नई उपलब्धि, हर नए कमाल पर आश्चर्य होता है। कुछ लड़कियाँ कॉलेज में पढ़ने के लिए साइकिल से देवघर जाने लगी हैं। यहाँ जो परिवर्तन आया है, वह एकदम स्पष्ट है। बच्चों के माँ-बाप में भी परिवर्तन आया है। उनके पास आज सुख-सुविधा है। उनकी वैसी विकट परिस्थिति नहीं रही जैसी 1989 में थी, जब दो वक्त की रोटी मिलना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। यह बदलाव इसलिए नहीं आया कि हमने इन लोगों को बहुत सारा सामान दिया है, बल्कि इसलिए कि ये कन्या-बटुक किसी तरह से अपने घर-परिवार में सुख-समृद्धि खींच लाए हैं।

नि:संदेह कन्याओं ने अपने घरों में समृद्धि को आकृष्ट किया है। न जाने कैसे, पर वे लक्ष्मी माँ को अपने घर बुलाने में सफल हुई हैं। अगले साल मैं इन्हें सोलर लैम्प दूँगा, ताकि ये शाम को भी पढ़ सकें। सबके घरों में बिजली लगा पाना तो सम्भव नहीं। हम लोग सोलर लैम्प के बारे में जानकारी इकट्ठी कर रहे हैं। अनेक मॉडलों पर प्रयोग भी कर रहे हैं। हमारे पास ऐसे सोलर लैम्प हैं जिन्हें अलग से बैट्री, स्विच या पैनल की जरूरत नहीं पड़ती। उन्हें इस्तेमाल करना बहुत आसान है। बस उन्हें जमीन में गाढ़ दो, वे दिनभर सूरज की रोशनी से चार्ज होते रहते हैं और जब अंधेरा होने लगता है तो अपने आप जल जाते हैं। यह टेक्नॉलजी यहाँ के लिए अच्छी है क्योंकि यहाँ तेज धूप पड़ती है। अगर हम हर परिवार को एक-दो दे सकें, तो वे अपने आंगन

को प्रकाशित कर पाएँगे। चमकते दीपक की तरह वह रातभर जलता रहेगा। गरीब गाँववालों के लिए इतना पर्याप्त है। उन्हें लालटेन या केरोसीन तेल की जरूरत नहीं पड़ेगी।

उष्णता और विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा सम्बन्धी यौगिक सिद्धान्त

हम सभी किसी-न-किसी देश के नागरिक हैं, लेकिन आजकल धीरे-धीरे अंतर्राष्ट्रीय होते जा रहे हैं। फिन्लैण्ड 'सौना' का देश है। वास्तव में वहाँ लोगों से ज्यादा सौना हैं। मैंने फिन्लैण्ड में पुरानी शैली के सौना का अनुभव किया है, जिसमें कमरे के बाहर रखे पत्थरों को गर्म करके अंदर गर्मी पैदा की जाती है। मुझे सौना के सिद्धान्त और उपयोगिता समझने में थोड़ी कठिनाई जरूर हुई। आखिर हम हिन्दुस्तानियों को तो गर्मी में रहने की आदत है। गर्मी हमारे चारों ओर है। हमें अपने कमरों को गर्म करने की जरूरत नहीं पड़ती। वे अपने आप ही गर्म हो जाते हैं। हमलोगों को तो दिनभर पसीने में तर रहने की आदत है।

बेल्जियम में एक प्रतिष्ठित योग शिक्षक थे, आन्द्रे वान लिस्बेथ। वे मेरे पुराने मित्र थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, 'स्वामीजी, जब मैं आपको फिन्लैण्ड ले जाऊँगा, तो एक अद्‌भुत अनुभव कराऊँगा।' वह 'अद्‌भुत अनुभव' सौना का था। उन्होंने बाद में मुझसे पूछा कि सौना पसंद आया कि नहीं। मैंने कहा, 'सौना का अनुभव तो भारत में रोज़ होता है। इसके लिए कोई आलीशान कमरा नहीं होता, बस फूस की झोपड़ी होती है, जिसमें गर्मी और पसीना एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते रहते हैं।'

कुछ दिन पहले जब मैं लुधियाना गया, तो एक होटल में रुका। वहाँ के हेल्थ क्लब में सौना की व्यवस्था थी। होटल के मैनजेर और मालिक चाहते थे कि मैं सौना स्नान का आनन्द लूँ। मैंने कहा, 'तुमने अपने होटल में सौना क्यों रखा है? एक हिन्दुस्तानी होने के नाते मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे इसकी जरूरत नहीं। लाखों-करोड़ों हिन्दुस्तानियों को सौना स्नान का अनुभव रोज़ होता है। अगर तुम्हें सौना ही चाहिए तो किसी गरीब की झोपड़ी में आधे घण्टे के लिए चले जाओ। तुम्हें बढ़िया सौना स्नान मिल जाएगा। और बाद में उस गरीब को पाँच सौ रुपये दे देना। उसके लिए वह किसी लॉटरी से कम नहीं होगा। उसकी जिन्दगी भर की पेंशन निकल आएगी। और तुम्हारे लिए यह फाइव-स्टार होटल के सौना से बहुत सस्ता साबित होगा।'

तुम्हारे शरीर का सामान्य तापमान 37 डिग्री रहता है। तुम लोगों को अंदाज भी है कि 37 डिग्री कितना गर्म होता है? तुम लोग यूरोप और न्यूज़ीलैण्ड से हो। शायद वहाँ तापमान ऐसा नहीं होता। लेकिन भारत में, अफ्रीका में, दक्षिण-पूर्वी एशिया में और निश्चित रूप से चीन में इसे अनुभव कर सकते हो। जब बाहर का तापमान 37 डिग्री हो जाता है तो वह बर्दाश्त के बाहर हो जाता है। लेकिन तुम्हारे शरीर के अन्दर का तापमान हमेशा 37 डिग्री रहता है और तुम इसे आराम से बर्दाश्त कर लेते हो।

अब मैं योग के दृष्टिकोण से चर्चा कर रहा हूँ। तुम्हारे शरीर की गर्मी, उसका तापमान 37 डिग्री है। वही तापमान बाहर होने पर असहनीय हो जाता है। अगर कभी गर्मी के मौसम में तुम भारत में रहोगे तो कहोगे, 'हे भगवान! मुझे हर हाल में एयर-कण्डीशनर चाहिए।' हो सकता है तुम्हें लू लग जाए, सन-स्ट्रोक हो जाए। पर देखो, अन्दर में वही तापमान है, तुम्हें उसका अनुभव हो रहा है क्या? नहीं। तुम बड़े आराम में हो। जैसे ही तुम्हारे शरीर का तापमान घटेगा, तुम्हें बुखार आ जाएगा। अगर तुम्हारे शरीर का तापमान 35 डिग्री हो जाए, तो बुखार के लक्षण दिखलाई देने लगेंगे। तुमने कभी इसके बारे में सोचा है?

योग की खोज ठण्ढे, बर्फीले देशों में नहीं हुई। योग की खोज भारत में हुई जहाँ बाहर और अन्दर के तापमान बराबर चलते हैं। इसलिए योगाभ्यास करते समय एक चीज का हमेशा ख्याल रखना। जिस कमरे में तुम अभ्यास करते हो, उसका तापमान शरीर के तापमान से बहुत भिन्न या कम नहीं होना चाहिए। यह योग की पहली शिक्षा है। अगर तुम्हारे शरीर का तापमान 37 डिग्री है और तुम 23 डिग्री के वातावरण में योगाभ्यास कर रहे हो तो 14 डिग्री का अंतर हो गया। तुम्हारे 37 डिग्री वाले शरीर को 23 डिग्री का वातावरण झेलना पड़ रहा है। शरीर को बाहर के वातावरण से तालमेल बिठाना पड़ेगा और अगर वह ऐसा नहीं कर सकता, तो तुम्हारे लिए समस्याएँ पैदा होंगी।

योगाभ्यास के लिए कमरे का तापमान 25-28 डिग्री से कम नहीं होना चाहिए। अगर 30 से 35 डिग्री के बीच रहे तो बेहतर। अभी तुम लोगों को यह जगह, यह कमरा गर्म लग रहा होगा, लेकिन योगाभ्यास के लिए यह एकदम उपयुक्त है। इसीलिए तुम्हारे कमरों में पंखों की लाइन काट रखी है। नहीं तो तुम लोग पंखे के नीचे अभ्यास करोगे, ठण्ढे देशों से जो ठहरे। आश्रम में पंखों को जानबूझकर नहीं लगाया है। तुम्हारे आश्रम प्रवास के दौरान पंखों का कोई काम नहीं। उनका उपयोग तुम्हारे यहाँ रहने के प्रयोजन से बिल्कुल विपरीत है।

अगर तुम्हें योगाभ्यास के लिए पंखे या एयर-कण्डीशनर युक्त कमरे उपलब्ध कराये जाएँ तो तुम्हारा यहाँ आना व्यर्थ जाएगा। आखिर तुम लोग योग से अधिकतम लाभ लेने आए हो न? अब मालूम चल गया न कि यहाँ पंखे चालू क्यों नहीं किए गए? इस आश्रम में पंखे उपलब्ध कराना कोई बड़ी बात नहीं। पंखे बनाने वाली कई कम्पनियों के मालिक यहाँ आते रहते हैं। मैं बिना एक पाई खर्च किये यहाँ सैकड़ों पंखे लगवा सकता हूँ। समस्या वह नहीं।

योग शिक्षकों को यह बात याद रखनी चाहिए कि इस शरीर की दशा इसके तापमान पर निर्भर करती है। अगर तुम्हारे शरीर का तापमान 37 डिग्री से गिरकर 35 डिग्री हो जाए, तो क्या होगा? तुम्हें चक्कर आ जाएगा। तुम बेहोश हो जाओगे। तुम अपने हाथ-पैर नहीं हिला सकोगे। अगर तापमान 40 डिग्री तक चला जाए तो तुम्हारे मस्तिष्क की कोशिकाएँ पिघलने लगेंगी। शरीर का स्वास्थ्य, इसकी सारी गतिविधियाँ तापमान से जुड़ी हैं और योग साधकों को इसकी अच्छी जानकारी होनी चाहिए। यह पहली बात हुई।

दूसरी बात यह कि शरीर में अनेक विद्युत-चुम्बकीय सर्किट भी हैं। अगर तुम्हारे मकान की बिजली प्रणाली में शॉर्ट-सर्किट हो जाए तो क्या होगा? अगर तुम्हारा फ्यूज़ अच्छा है तो वह उड़ जाएगा। या फिर तुम्हारे सभी बिजली के उपकरण खराब हो जाएँगे। अगर शरीर में कहीं शॉर्ट-सर्किट हो जाए तो क्या होगा? या तो फ्यूज़ उड़ेगा और तुम्हें चेतावनी का संकेत मिलेगा, या फिर शरीर के उस अंग में क्षति पहुँचेगी। तुम्हारे हृदय में, मस्तिष्क में, जिगर में, कहीं पर भी यह हो सकता है।

तुम्हें अपने शरीर की समुचित देखभाल करनी होगी ताकि शरीर के विद्युत-चुम्बकीय सर्किट में सही वोल्टेज, सही ऊर्जा रहे। यह ऊर्जा कहाँ से आती है? स्वादिष्ट, गरिष्ठ भोजन से नहीं। सादे, सुपाच्य भोजन से। ऊर्जा सरल भोजन और शुद्ध वातावरण से मिलती है। इस गाँव में मीलों तक कोई दफ्तर नहीं, कोई कारखाना नहीं, कोई ट्रैफिक नहीं। केवल पेड़ और खेत हैं, खेतों में चरती गाय-बकरियाँ हैं, शुद्ध हवा के ठण्ढे झोंके हैं, सीधे-सादे ग्रामीण लोग हैं। रात के समय पूरा सन्नाटा छा जाता है, केवल मेंढकों और झिंगुरों की आवाज सुनाई देती है। यही हमारे शरीर के विद्युत-चुम्कीय सर्किट को ऊर्जान्वित करते हैं। शरीर के सर्किट वातावरण से, हवा-पानी से, पेड़-पौधों से, पशु-पक्षियों से, उन सभी जीवों से, जिन्हें प्रकृति ने बनाया है, रीचार्ज होते हैं। उन सभी से हमारे बाहर-भीतर व्याप्त प्रभामण्डल को ऊर्जा प्राप्त होती है।

गुरु पूर्णिमा

18 जुलाई 2008



गुरु और भगवान

भगवान को समझना-समझाना बड़ा मुश्किल है। कोई कहता है वहाँ रहता है, कोई कहता है सब जगह रहता है, कोई कहता है, सिर्फ मंदिर, गिरजाघर या मस्जिद में रहता है, कोई बोलता है, हृदय में रहता है। अब कहाँ रहता है वह? और कुछ लोग तो कहते हैं, 'भगवान है ही नहीं।' अब यह भगवान एक बड़ी टेढ़ी खीर हो गई। वेदों में इस पर बड़ा अनुसंधान हुआ है। वेदों में भगवान को देवी-देवताओं में बाँटा, भूत-प्रेत-पिशाचों में बाँटा और बरगद-पीपल-तुलसी जैसे पेड़-पौधों में बाँटा, फिर नदियों और पहाड़ों में बाँट दिया,

फिर शालिग्राम, शिवलिंग, सब चीजों में खोजते गए। किसी-किसी को मिल भी गये। हाँ, भगवान मिले हैं। यह मत सोचना कि नहीं मिले हैं। भगवान मिलते हैं, मगर यह कहना बड़ा मुश्किल है कैसे। यहूदियों के पैगम्बर, मूसा को झाड़ी में आग दिखलाई दी। भगवान बुद्ध को ज्योति के रूप में दिखलाई दिये। रामकृष्ण परमहंस को काली के रूप में दिखलाई दिये।

इस भगवान के रूप को अनुभव करने का सब से अच्छा रास्ता है, मनुष्य शरीर। भूलना नहीं। मैं दो-तीन बार और दुहरा सकता हूँ। भगवान के अनुभव का, दिव्य अनुभव का सबसे अच्छा मौका है मनुष्य जीवन। इसमें भगवान का अनुभव अवश्य हो सकता है। समुद्र का स्वाद जानने के लिए समुद्र का सारा पानी पीने की जरूरत नहीं होती, बस एक बूँद चाटने की जरूरत होती है। उसी तरह भगवान को जानने के लिए, उनके पूरे विराट् स्वरूप को देखने की जरूरत नहीं, जैसा अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के ग्यारहवें अध्याय में दिखाया था। केवल थोड़ा चाट लो, बस। उसको कहते हैं अनुभव।

यह अनुभव तभी हो सकता है जब तुमने इस अनुभव के लिए किसी माध्यम को चुना हो। अगर यहाँ बिजली की तार न हो तो बल्ब रहते हुए भी नहीं जलेगा। माध्यम की जरूरत पड़ती है। जैसे बिजली को पॉवर हाउस से यहाँ लाने के लिए माध्यम चाहिए, वैसे ही खोपड़ी में उस अनुभव को उतारने के लिए भी एक माध्यम चाहिए। और वह माध्यम 36,000 वोल्ट वाला नहीं होना चाहिए, 220 वोल्ट वाला होना चाहिए। नहीं तो फ्यूज़ उड़ जाएगा, दिमाग फिर जाएगा, मर जाओगे। भगवान की शक्ति को ऐसे माध्यम में उतारो, जो उसे 220 वोल्टेज में लाकर दे।

हम 220 वोल्ट हैं। और ये कन्या-बटुक भी 220 वोल्ट हैं। पॉवर हाउस में पैदा होने वाली बिजली को घर में जस का तस नहीं लाओगे, ट्रान्स्फॉर्मर से गिराकर लाओगे। 36,000 वोल्ट की बिजली को ट्रान्स्फॉर्मर में लाते हैं, फिर उसको 220 वोल्ट में गिराते हैं। फिर बिजली अगर कमजोर हो तो स्टेबलाइजर लगा देते हैं। किसी-किसी को स्टेबलाइजर की जरूरत भी पड़ती है।

मैं समझा रहा हूँ माध्यम किसको कहते हैं। और मैं अभी भगवान के बारे में बात कर रहा हूँ, गुरु के बारे में नहीं। भगवान एक अद्भुत शक्ति है। उसके बारे में ज्यादा बोलना बेकार है। तुम सुनते रहो, मैं बोलता रहूँ, दुनिया खतम हो जाएगी, किन्तु भगवान की लीला का कोई अन्त नहीं है। सृष्टि की लाखों

बार प्रलय हो जाएगी, लेकिन भगवान के माहात्म्य को कभी पारिभाषित नहीं किया जा सकेगा।

मैं उस भगवान की बात कर रहा हूँ। उसका थोड़ा-सा मजा लेना है तो माध्यम ठीक से चुनो। और माध्यम ऐसा नहीं कि स्वामी सत्यानन्द तो ब्रह्मचारी भी हैं, तपस्वी भी हैं, सब कुछ हैं। तब फिर से 36,000 वाला हिसाब हो जाएगा। इसलिए गुरु में खोट होना जरूरी है। हाँ, जब बड़ी शक्ति को शरीर में उतारा जाता है, तब उसको छोटे स्तर पर उतारा जाता है। गुरु एक माध्यम है। और गुरु होना चाहिए।

अब गुरु का मतलब क्या होता है? पति, पत्नी या पुत्र का मतलब सब जानते हैं। ये सम्बन्ध हैं। उसी तरह गुरु भी एक सम्बन्ध है। पुत्र और माँ के बीच कौन-सा सम्बन्ध है? उसका नाम है वात्सल्य। भाई और बहन के बीच जो सम्बन्ध है, उसका नाम है स्नेह। पत्नी और पति के बीच जो सम्बन्ध है उसका नाम है, प्रेम और विश्वास। सिर्फ प्रेम पर्याप्त नहीं। बिना प्रेम के विश्वास नहीं होता और बिना विश्वास के प्रेम की परिभाषा नहीं होती।

वैसे ही गुरु और शिष्य के बीच जो सम्बन्ध है, वह है आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध। जब शिष्य की आत्मा गुरु की आत्मा के साथ तन्मय हो जाती है, बन्धन में बंध जाती है, तब उसको कहते हैं गुरु-शिष्य सम्बन्ध। जब शादी होती है तब क्या होता है? पण्डित लोग मंत्र वगैरह करते हैं। वैसे ही गुरु से सम्बन्ध बनाने के लिए पहले मंत्र लेना पड़ता है। कान फूँकना पड़ता है। और बाँया कान फूँकना पड़ता है, फिर कान से मंत्र मस्तिष्क में जाता है और मस्तिष्क के न्यूरॉन्स को, अन्तर्मन को, अंतरात्मा को प्रभावित करता है। जिस तरह से बीज को धरती में डाला जाता है उसी तरह ही मंत्र दिमाग में जाता है। धरती में डालने के बाद वह बीज या तो मर जाता है या फिर अंकुरित होता है। फिर अंकुरित होने के बाद पल्लवित होता है। उसके बाद भी वह मर सकता है या बड़ा हो सकता है, विशाल बरगद के पेड़ की तरह।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध मंत्र से शुरू होता है। इसको कहते हैं दीक्षा। गुरु-शिष्य के बीच के सम्बन्ध को विवाह नहीं कहते। वह पति और पत्नी के सम्बन्ध को कहते हैं। दोनों के बीच में प्यार हो गया, शादी हो गयी। उसी तरह गुरु और शिष्य, दोनों के बीच में मंत्र का आदान-प्रदान हो गया, दीक्षा हो गई, गुरु बन गए, चेला बन गए। अब वह शिष्य क्या करता है, अपने गुरु को अपने हृदय में बसा लेता है। ध्यान से सुनो, यह बहुत जटिल चीज

है। इसको समझना और समझाना बहुत कठिन है। आध्यात्मिक जीवन में गुरु का क्या वास्तविक स्थान है, इसे समझाना बहुत मुश्किल है। गुरु अन्दर चला जाता है। आँख बंद करो, वही दिखाई पड़ता है।

अब सवाल यह उठता है कि जो गुरु अन्दर में दिखता है, वह कौन है और जिससे तुमने कान फुँकवाया था, वह गुरु कौन है। थोड़ा-सा ध्यान देकर सुनना। जिस गुरु ने तुम्हारे कान फूँके थे, वह तो मैं हूँ। और जिसको तुम अन्दर देखते हो वह?

इस पत्ते को देखो, मान लो यह तुम्हारा गुरु है। तुमने आँखों को बन्द किया, तुमको अब यह पत्ता भीतर दिखाई देता है। तो क्या यही पत्ता तुम्हारे भीतर चला गया? नहीं। वह तुम हो। जिस गुरु को तुम आँख बन्द करके देख रहे हो, वह गुरु तुम हो। जिस गुरु से तुमने कान फुँकवाया था, वह माध्यम था। अगर इस सूक्ष्म चीज को तुम समझ गए, तो गुरु तुम्हारे जीवन का अनिवार्य सत्य हो जाएगा, क्योंकि वह अन्दर वाला जो रूप है, वह अभी निराकार है। उसको जगाने के लिए एक उत्प्रेरक की, एक माध्यम की जरूरत पड़ती है। बिल्कुल भूलना नहीं इस चीज को।

भगवान जितने असीम हैं, उतने ही असीम तुम हो। जिस तरह भगवान निराकार हैं, तुम भी निराकार हो। तुम्हारा कोई नाम नहीं, कोई रूप नहीं, कोई स्थान नहीं। पर जब तुम गुरु को अन्दर देखने का प्रयास करते हो, तुम निराकार को एक आकार दे रहे हो, बेनाम को एक नाम दे रहे हो। यही सत्य है, और इस सत्य का साक्षात्कार करने के लिए बाहरी गुरु का होना अनिवार्य है।

गुरु-शिष्य परम्परा वेदों की परम्परा है। किसी भी अन्य परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध पर इतने विस्तार से नहीं लिखा गया है। एक बात तुम्हें बोलता हूँ, जितने भी गुरु आज तक संसार में हुए हैं, बड़े या छोटे, वे बेईमान नहीं हुए हैं। लोग कहते हैं न गुरु ठगता है। अरे, गुरु क्या ठगेगा, तुमको तो दुनिया ठग रही है। बम्बई के नाचने वाले और नाचने वालियाँ तुमको ठग रहे हैं। गुरु क्या ठगेगा तुम्हें? ज्यादा-से-ज्यादा पाँच सौ रुपया ही तो दोगे, वह कागज का टुकड़ा रिज़र्व बैंक का, इससे ज्यादा क्या दोगे? आज गुरु का दिन है। हर व्यक्ति को गुरु को उस निराकार तत्त्व का माध्यम जानकर ग्रहण करना होगा। और जब मार्गशीर्ष महीने में यहाँ आओगे तब मैं तुम्हें दूसरी बात बोलूँगा कि कन्याएँ उस शक्ति का माध्यम हैं, क्योंकि भगवान ने इन्हें कुछ साल तक द्वैत-रहित, माया-रहित बनाया है।

रिखिया के कन्या-बटुक

आज गुरु पूर्णिमा के शुभ दिन हम अपने रिखिया की कन्याओं और बटुकों का बहुत आभार प्रकट करते हैं। यह सारा आयोजन इनके द्वारा किया गया है। इन छोटे बच्चों का पुरुषार्थ बहुत ऊँचा है। यहाँ के बच्चों में संस्कार जागे हैं। और इनके अन्दर आत्म-तत्त्व जाग रहा है। इनका जीवन बहुत तेजी से बदलता जा रहा है। और इनकी वजह से इस पंचायत का स्वरूप पहले से ज़्यादा खिल गया है। बीस साल पहले रिखिया की ऐसी हालत थी कि बंजर जमीन, बंजर शरीर, बंजर दिमाग थे, सब बंजर था। बीस सालों में जो बदलाव आया है, उसकी वजह और कुछ नहीं, बस यही कि इन लोगों ने संस्कार ग्रहण किये हैं।

हम यह नहीं बोल रहे हैं कि इस पंचायत के बड़े लोग, चाचा-दादा लोग बहुत ज्ञानवान् हो गए हैं। ऐसा नहीं है। वे बेचारे तो काम-धंधे में लगे रहते हैं। पर बच्चों ने एक चीज़ से यहाँ की पूरी-की-पूरी व्यवस्था और रोशनी बदल दी है, और वह है – कीर्तन, रामायण, श्रीमद् भगवद्गीता और हवन। हफ्ते में ये लोग तीन-चार हवन करते हैं। हमारी पंचायत के जितने छोटे लड़के-लड़कियाँ हैं, उस हवन में भाग लेते हैं। हवन में समिधा भी वही डालते हैं। हम लोग केवल उसके लिए स्थान तैयार करके रखते हैं। यहाँ कोई कम्पनी या कारखाना नहीं खुला है। सिर्फ एक स्थान है, जिसे आश्रम कहते हैं। और आश्रम में हम इन्हें संस्कार देते हैं।

संस्कार का मतलब है व्यक्ति की अंतरात्मा का प्रशिक्षण। इनकी अन्तरात्मा को संस्कारित किया गया है। इन बच्चों के सौन्दर्य लहरी के पाठ को सुनकर अच्छे-अच्छे विद्वानों के छक्के छूट जाते हैं। ये ब्राह्मण बच्चे नहीं हैं। क्षत्रिय या वैश्य भी नहीं हैं। एक-आध हो सकते हैं। ये उस वर्ग के हैं जिसे तुम लोग छूना भी नहीं चाहते।

इनको संस्कार मिला है। और यह हमारा धर्म है कि इनको केवल पढ़ाई नहीं, संस्कार दिये जाएँ। हिन्दुस्तान के लोगों! ध्यान दो, पढ़ाई से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है संस्कार। व्यक्ति का स्वभाव और चरित्र बी.ए. या एम.ए. की डिग्री से कहीं अधिक अहमियत रखता है। यह आध्यात्मिक शिक्षा है। आध्यात्मिक विद्या मनुष्य के संस्कारों, चेतना और आचरण को बनाती है। और समाज को हर तरह से प्रभावित करती है।

एक दिन था जब हमारा देश बहुत ऊँचा था। हम चोर और भ्रष्ट नहीं थे। एक वचन राजा दशरथ ने दिया, *'रघुकुल रीति सदा चली आई, प्रान जाहुँ बरु*



बचनु न जाई।' दशरथ मर गए, लेकिन अपना वचन नहीं तोड़ा। कितना ऊँचा था यह देश! यहाँ भ्रष्ट लोग नहीं थे। क्यों? इसलिए कि उन्हें संस्कार मिला था। संस्कार के बिना मनुष्य पशु है। और संस्कार होने पर अनपढ़ व्यक्ति भी महान् है। रामकृष्ण परमहंस पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन संस्कारी थे। मैं पढ़े-लिखों की निन्दा नहीं कर रहा हूँ। मैं सिर्फ इतना कह रहा हूँ कि सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है अपने बच्चों में संस्कार डालना। और संस्कार डालने हेतु उनके लिए आश्रम चुनना।

आश्रम संन्यासियों के लिए नहीं होता है। आश्रम परिसर उस इलाके के रहने वालों के लिए होता है। मगर इसका मतलब यह नहीं कि वहाँ जाकर जब चाहो ताश खेल लो। जैसे हमारे बगल वाले हनुमान मन्दिर में दिन-रात ताश ही खेलते हैं। बड़े लोगों का यह हाल है। उनसे तो कोई उम्मीद नहीं है। दुनिया का जितना छल-फरेब होता है, वह बड़े लोग ही करते हैं।

छोटे बच्चे शनिवार शाम को यहाँ महामृत्युञ्जय का हवन करते हैं। हर एकादशी को अखण्ड गीता पाठ करते हैं। साल में दो बार इनको सम्पूर्ण रामचरितमानस का पाठ करने का मौका मिलता है। एक तो चैत के महीने

में और दूसरा आश्विन महीने में। दो बार पूरी रामायण ये पढ़ते हैं, आदि से अन्त तक। इनके लिए यह छोटी-मोटी बात नहीं है, बड़ी उपलब्धि है। इसके अलावा यहाँ लक्ष्मी, सरस्वती, गुरु, गणेश, विष्णु और शिवजी के हवन बराबर होते रहते हैं। गुरुजी का हवन करें, तो ज्ञान की प्राप्ति होगी। लक्ष्मी का हवन करें, तो समृद्धि बढ़ेगी। और सरस्वती का हवन करें, तो बढ़िया डिग्री मिलेगी।

इन बच्चों की उपलब्धि से इनके आस-पास का वातावरण उल्लासमय हो गया है। मुझे इनके घर के लोगों से पूरी रिपोर्ट मिलती है। ये दिनभर घर में केवल आश्रम की ही चर्चा करते हैं। अपने घर में माता-पिता, चाचा-चाची को बोलते हैं, 'ऐसा क्यों करते हो, आश्रम में तो ऐसा नहीं होता।' दिनभर ये घर में कीर्तन करते और अँग्रेजी बोलते हैं। जब मैं सबेरे घूमने जाता हूँ, तो ये बच्चे गाँव में मुझे 'गुड मॉर्निंग! हाउ आर यू? फाइन, थैंक यू' बोलते हैं।

आगे जाकर ये बच्चे किसी दूसरे समाज में जाएँगे। अपने बच्चों को ऐसी बातें सिखानी चाहिए जिससे उनके अन्दर प्रतिरोधक क्षमता आए। दूसरे समाज से जब कोई नकारात्मक संस्कार उनके ऊपर आएगा, तब वे उसका प्रतिरोध कर सकेंगे। विवेक के लिए दो तरफा ज्ञान होना ज़रूरी है। बिना दो तरफा ज्ञान के विवेक हो ही नहीं सकता। क्या सही है और क्या गलत, इन बच्चों के लिए यह जानना बहुत जरूरी है। यह गलत है तुमको कैसे पता चलेगा, जब तक कि तुमको पता नहीं चले कि सही क्या है।

बच्चों को बचपन से ही आध्यात्मिक जीवन में ले जाने के लिए उनका आश्रम वातावरण से परिचय होना बहुत ज़रूरी है, क्योंकि वे घर में तुम्हारी बात तो सुनने वाले हैं नहीं। घर का जोगी जोगड़ा। माता-पिता गुरु नहीं हो सकते। वैसे तो पति को भी परमेश्वर कहते हैं, मगर पति परमेश्वर नहीं होता। पति, पति होता है, वह गुरु नहीं हो सकता है। अगर पति गुरु है, तो घर में उसी से ही भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र वगैरह क्यों नहीं पढ़ लेते। यूनिवर्सिटी क्यों जाते हो?

हिन्दुस्तान में आश्रमों की कमी नहीं है। मल्टिप्लेक्सों की कमी हो सकती है, पर आश्रमों की नहीं। उत्तर से दक्षिण तक, यहाँ तक कि लंका, बर्मा, थाइलैण्ड, तिब्बत, कहीं भी चले जाओ, तुमको आश्रम मिलेंगे। जहाँ साधु लोग बैठकर अपना कर्म करते हैं। अपने बच्चों को आश्रमों का अनुभव दो, क्योंकि आश्रमों का एक ही लक्ष्य होता है, मनुष्य बनाना। जैसे एम.ए.,

बी.ए. या एल.एल.बी. एक डिग्री है, वैसे मनुष्य बनना भी एक डिग्री है। अपने बच्चों को आश्रमों में रखो, अच्छे संस्कारों में रखो और इस देश को महान् बनाओ।

हमारे देश की संस्कृति में आश्रम बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह नहीं समझना कि आश्रम में जाने से साधु बन जाओगे। नहीं, आश्रम कभी साधु बनाने का अभियान लेकर नहीं बनते हैं। आश्रमों में बच्चों को हर तरह से आध्यात्मिक जीवन में दीक्षा दी जाती है। यह आध्यात्मिक जीवन की दीक्षा बड़े होने पर बच्चों के काम आएगी, चाहे वे जहाँ भी रहें। संसार में बड़े होने पर अनेक परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। नौकरी, व्यापार, देश-विदेश या दूसरे धर्म वालों के देश में रहना, गरीबी झेलना या किसी बहुत बड़ी दुर्घटना का सामना करना, इन अनुभवों से मन पर बहुत असर पड़ता है। मान लो कि तुम एक बहुत सम्पन्न व्यापारी बन गए हो, क्या तुम्हारे मन पर इसका असर नहीं पड़ेगा? मन पर हर घटना का असर पड़ता है। शादी हो गई, नहीं पट रही है, मन पर असर पड़ता है। सुख-दुःख, सफलता-विफलता का मन पर गहरा असर पड़ता है। बाहर की बातों को तो छोड़ दो, अपने मन में जो विचार आते हैं, उसी से हम प्रभावित हो जाते हैं। मन में जो ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, अपराध, भक्ति, ज्ञान या सत्संग का ख्याल आता है, वह मन पर गहरा प्रभाव डालता है।

इन कन्या-बटुकों का ख्याल रखना इस आश्रम का धर्म और कर्त्तव्य है। यह हमारा एक संकल्प है। और भगवान चाहते हैं यह संकल्प पूरा हो। हम सोचा करते थे इन्हें कहाँ खिलायेंगे, हजार-डेढ़ हजार बच्चे हैं, इनके माता-पिता मिलाकर चार-पाँच हजार हो जाते हैं। एक जगह अभी रिखिया हाट में मिली है। बहुत बड़ा हॉल है, चार हजार लोग बैठ कर खाना खा सकते हैं। अभी बन रहा है, तैयार होने के बाद हमारे कन्या-बटुक संध्या का भोजन आश्रम में करेंगे। दोपहर का भोजन सरकार का काम है, हम संध्या का भोजन करायेंगे। हम आपको हिन्ट नहीं दे रहे हैं। हम हिन्ट देने वाले साधु नहीं हैं। हमें हमारे गुरुजी ने ब्लैंक चेक दिया हुआ है। हमें आपके चेक की जरूरत नहीं है। हमारे गुरुजी ने कहा था, 'जब तक पेड़ों को पानी दोगे, तब तक उनमें से फल निकलेंगे।' ये पेड़ हैं, हम पानी देंगे। वहाँ इतना ही नहीं होगा, बल्कि इनके स्वास्थ्य की जाँच भी की जाएगी, हर हफ्ता, हर महीने। इनके माँ-बाप की भी जाँच की जाएगी।

इनके मनोरंजन के लिए यज्ञशाला हॉल है। यहाँ इनको फिल्म दिखलाते हैं – रामायण, महाभारत, लव-कुश, क्राइस्ट, हैरी पॉटर, आदि। दुनियाभर की सभी फिल्में देखी हैं इन बच्चों ने। इनको खेल-कूद, मनोरंजन की सामग्री भी उपलब्ध करायेंगे, क्योंकि बच्चों के लिए यह बहुत जरूरी है। बच्चे खेलेंगे-कूदेंगे, तभी कुछ बन सकेंगे। यह सब अगले कुछ सालों में होने वाला है।

हमारी इन लोगों के प्रति एक समर्पण की भावना है। आपको बच्चे बहुत प्यारे लगते हैं, तो हमें भी बच्चे बहुत प्रिय हैं। परन्तु दो-तीन के बदले इतने सारे बच्चों को हमने अपना माना है। हम चाहते तो दो-तीन से काम चला लेते, जैसे आप लोग दो-तीन से काम चला लेते हैं। लेकिन हमने कहा दो-तीन से काम नहीं चलेगा, हमको चाहिए बहुत बच्चे। गान्धारी के सौ बच्चे थे, हमारे सौ से भी ज्यादा हैं!

अभी यहाँ इन बच्चों के लिए कम्प्यूटर कक्षा भी खुली है। ये सब बच्चे कम्प्यूटर जानते हैं। वैसे आखिर में इनकी तकदीर क्या होगी हम जानते हैं। किसी किसान, हलवाहे, पासवान, पासी, महतो या रमानी के घर में जायेंगे। कोई प्रसाद या शर्मा के घर में तो जाने वाले हैं नहीं। और वहाँ क्या करेंगे? सवेरे गोबर उठायेंगे, घास काटेंगे, चावल और पानी पहुँचाने के लिए जायेंगे, यही इनकी तकदीर है।

गरीबी अभिशाप नहीं और ऐश्वर्य कोई बहुत बड़ा वरदान नहीं। बल्कि ऐश्वर्य अभिशाप है अगर संस्कारी व्यक्ति के पास न हो तो। गरीबी वरदान है, बशर्ते आदमी उसको जीना सीखे। साधु-महात्मा गरीबी में रहते हैं न? मुसलमानों और ईसाइयों में, हिन्दुओं, जैनों और बौद्धों में देखो, सब साधु-महात्मा गरीबी में जिये हैं। और गरीबी नहीं मिली तो स्व-आरोपित गरीबी, अपने को गरीब की तरह रखा उन्होंने। ऐश्वर्य अभिशाप है, भूलना नहीं। यह सूत्र है इस युग का। देख नहीं रहे हो क्या, अमीर देशों के लोग पागल हो रहे हैं।

गरीबी को ठीक तरीके से जीने के लिए हम नहीं चाहते कि बच्चे आगे कम्प्यूटर चलायें। नहीं, हम केवल इनका दिमाग खोलना चाहते हैं, इनकी चेतना को खोलना चाहते हैं, इनकी भावनाओं को खोलना चाहते हैं ताकि ये जिन्दगी को ईमानदारी के साथ, भगवद्-भक्ति के साथ जीयें। अब हो सकता है इन लोगों में से कोई शंकराचार्य, मुहम्मद, क्राइस्ट और रामकृष्ण परमहंस मिल जाए। नहीं कह सकते इन्सान की तकदीर उसे क्या बना दे।

शतचण्डी महायज्ञ

27 नवम्बर 2008



रिखिया की कन्याएँ

मैं आप लोगों का इन सुन्दर, भोले-भाले बच्चों से परिचय कराना चाहता हूँ। रिखिया की सुन्दरता और इस यज्ञ की सुन्दरता की प्रतीक ये कन्याएँ, जगज्जननी देवी माँ के माध्यम के रूप में चुनी गई हैं। जिस तरह बिजली के वितरण के लिए तुम ताँबे की तार चुनते हो, क्योंकि वह बिजली के प्रवाह का अच्छा माध्यम है, उसी तरह हमने इन कन्याओं को चुना है, क्योंकि वे उस दैवी शक्ति की अच्छी माध्यम हैं, जिसका इस शतचण्डी महायज्ञ में आवाहन किया जा रहा है।

आप सब इस भव्य यज्ञ में मेहमान हैं और ये कन्याएँ मेज़बान। ये समाज के उच्च वर्ग से नहीं हैं। ये मध्यम वर्ग या निम्न वर्ग से भी नहीं हैं। ये समाज के उस वर्ग से हैं, जिसके बारे में पाश्चात्य लोगों, और बहुत-से हिन्दुस्तानियों को भी बिल्कुल कोई जानकारी नहीं है। ये समाज के निम्नतम वर्ग से हैं। समाज में इनकी कोई पहचान नहीं, कोई स्थान नहीं। हर दिन सबेरे-सबेरे ये गोबर इकट्ठा करती हैं, धान या गेहूँ की फसल खेत से खलिहान तक ढोकर ले जाती हैं, गाय-भैंस को चराने ले जाती हैं। सूर्योदय से पहले उठ जाती हैं और आस-पास के खेतों में शौच के लिए जाती हैं। किसी पोखर या तालाब में नहा लेती हैं और फिर सूखे पत्तों और लकड़ियों की तलाश में बहुत दूर तक निकल जाती हैं, ताकि इनके घर में चूल्हा जल सके। इनके जीने का तरीका तुमसे बिल्कुल अलग है। इतना अलग कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। पर सभी सरल, सीधी-सादी और भोली-भाली हैं।

'धन्य हैं ये विनीत लोग, इन्हें यह धरती विरासत में मिलेगी।' यह बाइबल का कथन है। धन्य हैं वे लोग जो विनीत हैं, जो दरिद्र हैं, जो विनम्र हैं, क्योंकि वे ही इस धरती के सच्चे वारिस हैं। ऐसे लोगों की समाज में कोई पहचान नहीं होती। हमारे समाज में तो केवल अमीर और ताकतवर लोगों की पहचान होती है। गरीब लोगों की कोई हैसियत नहीं। वे बिना किसी पहचान के अपना जीवन जीते हैं।

बाइबल के अनुसार यही लोग धरती के वारिस हैं, क्योंकि ये हजारों-लाखों साल तक बरकरार रहेंगे। ये इतने सीधे-सादे और विनीत हैं कि किसी भी परिस्थिति में बिना किसी शिकायत के रह सकते हैं। इन्होंने बड़ी-बड़ी प्राकृतिक और राजनैतिक विपदाओं को झेला है, बिना किसी छत के खुले आसमान के नीचे सोये हैं, भूख-प्यास सहन की है, साँप-बिच्छू-मच्छरों के बीच रहते हुए खतरों को झेला है। ये लोग जो पानी पीते हैं या खाना खाते हैं, उस पर तुम शायद एक दिन भी निर्वाह न कर पाओ। इसीलिए ये धरती के वारिस हैं, धरती इनकी है।

ऐशो-आराम का जीवन बिताने वाले अमीर लोग विपदाओं को नहीं झेल सकते। केवल ऐसे विनीत और विनम्र लोग ही सभी विपदाओं को झेलकर दुबारा एक नया जीवन शुरू करेंगे। अगर ये भी नहीं बचे, तो धरती वीरान और बंजर हो जाएगी, क्योंकि तुम लोग धरती को विरासत में पाने लायक नहीं। बाइबल में, कोरान में, उपनिषदों में मैंने यही पढ़ा है।

इस यज्ञ में तुम इन गरीब, विनीत, निष्कपट, सीधे-सादे, भोले-भाले बच्चों के मेहमान हो। ये सभी रिखिया की भाग्यशाली संतानें हैं जो मेरे यहाँ आने के बाद पैदा हुईं। इस जगह का नाम रिखिया है, जिसका मतलब ऋषियों की जगह। ये बच्चे मुझे कभी नहीं देखते क्योंकि मैं एकान्त में रहता हूँ। स्वामी सत्संगी ही इनसे मिलती है और इनकी पूरी देखभाल करती है। वह यह काम पिछले अठारह सालों से करती आ रही है।

तो ये हैं वे बच्चे जो अगले पाँच दिनों तक आप सब की मेज़बानी करेंगे, और पाँचवे दिन हम कन्या पूजन के माध्यम से इनकी आराधना करेंगे। यह एक परम पवित्र तांत्रिक अनुष्ठान है, जिसमें कन्याओं को देवी की जीती-जागती छवि के रूप में पूजा जाता है। ये देवी नहीं हैं, देवी की प्रतीक हैं, जिनके माध्यम से देवी की शक्ति साकार होकर हम सब पर अपनी कृपा न्यौछावर करेगी।

कन्या की अवधारणा ईसाइयों के लिए कोई नई चीज नहीं। और भारतीय तो इससे भली-भाँति परिचित हैं ही। कन्या कौमार्य-भाव को दर्शाती है और यह भाव ईसाई परम्परा का अभिन्न अंग है, जहाँ मरियम को कुमारी कन्या के रूप में पूजा जाता है। कन्या शक्ति के उस आयाम का प्रतीक है, जो शुद्ध है, जो बाहरी प्रभावों से निर्लिप्त है, जो अपनी क्षमता से अनभिज्ञ है। आराधना के द्वारा कन्याएँ देवी माँ की सूक्ष्म, परिष्कृत और देदीप्यमान् ऊर्जा के अवतरण का माध्यम बनती हैं, और उनके माध्यम से हमें देवी माँ का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

भरतनाट्यम्

अब कन्याएँ गौरी और गणेश के सम्मान में एक मंगलनृत्य प्रस्तुत करेंगी। गौरी माता है और गणेश पुत्र। भक्ति योग में ऐसे बहुत-से सुन्दर, सुमधुर सम्बन्धों के जोड़े पाये जाते हैं। राधा-कृष्ण एक जोड़ा है, जो प्रेमी और प्रियतम के सम्बन्ध का प्रतीक है। सुभद्रा-कृष्ण एक अन्य युगल है, जो भाई-बहन के सम्बन्ध को दर्शाता है। इस तरह भक्ति योग में माँ और बेटे, भाई और बहन, मित्र और सखा जैसे अनेक भावनात्मक सम्बन्ध हैं। भक्ति में भावना ही महत्त्वपूर्ण है। इसी भावना को अब इस देश के पारम्परिक नृत्य, भरतनाट्यम् के माध्यम से अभिव्यक्त करके गौरी-गणेश की आराधना की जाएगी।



यही वह नृत्यशैली है जिसे मैंने आठ साल की उम्र में सीखा था। मैं सन् 1962 तक इस शैली में सार्वजनिक नृत्य प्रस्तुत करता रहा। फिर जब मैंने योग प्रचार का बीड़ा उठाया तब सार्वजनिक नृत्य बन्द कर दिये। मैंने अल्मोड़ा के एक विख्यात नृत्य प्रशिक्षण संस्थान, उदय शंकर भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र से नृत्य सीखा। उनका मुख्यालय मेरे जन्मस्थान, अल्मोड़ा में ही था और मैं वहाँ भरतनाट्यम् सीखा करता था। जब मैं ऋषिकेश में अपने गुरु के आश्रम में रहता था, तो वहाँ भी समय-समय पर नृत्य प्रस्तुत करता था। उस समय वहाँ रुक्मिणी देवी अरुन्डेल जैसी नृत्य जगत् की मशहूर हस्तियाँ आया करती हैं। खैर, अब तो मैं पचासी साल का हो गया हूँ, और वैसा नृत्य करना अब मेरे लिए बहुत मुश्किल है।

भगवान

भगवान एक बहुत बूढ़ा आदमी है। जिस भगवान में तुम विश्वास रखते हो, वह इतना वृद्ध है कि कभी मरता नहीं। शायद वह कभी जन्मा ही नहीं। अगर जन्मा भी तो आज से करोड़ों साल पहले। अब उसकी क्या उम्र होगी, जरा

सोचो! मैं तो सिर्फ पचासी साल का हूँ। तुम्हारे भगवान की उम्र तो मुझसे कहीं ज्यादा होगी, फिर भी तुम उस बूढ़े से प्रेम करते हो!

बच्चे

हिन्दुस्तान के किसी भी आश्रम में, दुनिया के किसी भी धार्मिक स्थान में चले जाओ, पर तुम्हें इतने सारे बच्चे इतने गम्भीर अनुष्ठानों में भाग लेते हुए कहीं नहीं मिलेंगे। अगर माइकल जैक्सन या माधुरी दीक्षित का कार्यक्रम हो, तो बच्चे जरूर पहुँच जाएँगे, लेकिन रामायण का पाठ हो तो कोई नहीं आएगा। सिर्फ बूढ़े लोग ही आएँगे।

तुम्हें रिखिया में ऐसा माहौल सालभर देखने को मिलेगा। यह तुम्हारा सौभाग्य है जो तुम यहाँ उपस्थित हो। बच्चों के सान्निध्य में होना अपने में हर्षोल्लास का विषय है। अगर मैं शादी-शुदा होता तो मेरे दो-तीन बच्चे होते, लेकिन एक संन्यासी होने के नाते मेरे कितने सारे बच्चे हैं! इनका पिता होने में बहुत आनन्द आता है। मैं बाप होने का टैक्स दिये बगैर इन सबका बाप हूँ! बीच-बीच में थोड़ा मज़ाक होना चाहिए न, क्यों जी!

1 जनवरी से 31 दिसम्बर तक रिखिया में सालभर ऐसा वातावरण बना रहता है। कभी ये बच्चे नीले वस्त्रों में दिखाई देंगे, तो कभी लाल में। कभी जीन्स में, कभी ट्रैकसूट में तो कभी लहंगा-चोली में। ये बच्चे यहाँ पिछले अठारह सालों से आ रहे हैं। कई बच्चों ने अपनी पढ़ाई पूरी कर ली है, कई बच्चों की तो शादी और बच्चे भी हो गए हैं। कई बच्चे कोलकाता, मुम्बई, पुणे, आसनसोल जैसी जगहों में चले गए हैं। रिखिया सब जगह फैल गया है। अगले पचास सालों में यह पूरी दुनिया में फैल जाएगा, क्योंकि बच्चे ही धरती का सुनहरा भविष्य हैं। हम लोग धरती का भविष्य नहीं हैं। भविष्य तो दूर, हम वर्त्तमान भी नहीं हैं। हम धरती का अतीत हैं।

धरती का भावी रूप बच्चों पर निर्भर है। अगर उन्हें उन्मुक्त वातावरण में सही ढंग से प्रशिक्षित किया जाए, तो वे एक नए संसार, एक नए समाज का सृजन करेंगे। रिखिया इसका सुन्दर उदाहरण है। तुम इसे धर्म कहो, मैं मानने को तैयार हूँ। तुम इसे अध्यात्म कहो, वह भी ठीक है। तुम इसे रहस्यवादी तंत्र-मंत्र, जादू-टोना कह लो, वह भी चलेगा। और अगर तुम इसे हर्ष, उल्लास और आनन्द का उत्सव कहो, तो इससे बढ़िया परिभाषा कोई नहीं। यहाँ पर तुम्हें सब कुछ मिलेगा।

क्रिसमस

25 दिसम्बर 2008



क्रिया योग और ऊर्जा का संतुलन

क्रिया योग में हम जिस शक्ति की, जिस ऊर्जा की चर्चा करते हैं, यह केवल वह शक्ति नहीं जिससे गर्मी या गति उत्पन्न होती है। मैं उस ऊर्जा की बात कर रहा हूँ जो भीतरी द्वार का ताला खोलती है। उस ताले को खोलना बहुत मुश्किल है। लेकिन एक बार तुम उसे खोल देते हो तो तुम बुद्ध या क्राइस्ट के समान बन सकते हो।

इसका एक पक्ष और है, जिसका तुम्हें ख्याल रखना चाहिए। सामान्यतया कहा जाता है कि योग के इन अभ्यासों को ऐसे स्थान में करना चाहिए जहाँ

पर्याप्त ऑक्सीजन हो। अगर ऐसी बात है तो फिर उन गुफाओं का क्या महत्त्व जिनकी चर्चा प्राचीन काल से की जा रही है? सभी महान् योगी गुफाओं में ही तो रहे हैं।

गुफा ऐसा स्थान है जहाँ कार्बन कैद हो जाता है। वहाँ ऑक्सीजन भी रहती है, लेकिन थोड़ी मात्रा में। गुफाओं में कार्बन ही प्रचुर मात्रा में रहता है। स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक जीवन में कार्बन की क्या भूमिका है। आजकल सब जगह लोग यही चर्चा करते हैं कि कार्बन-युक्त गैसें खतरनाक हैं, उनसे ग्रीनहाउस इफेक्ट पैदा होता है, ग्लोबल वॉर्मिंग होती है। अब इसकी तुलना उन योगियों के जीवन से करो, जिनके बारे में तुम प्राय: सुनते हो। उनके बारे में क्या सुनने को मिलता है? यही न कि वे इस गुफा में रहते थे, उस गुफा में रहते थे। यहाँ तक कि आधुनिक युग में क्रिया योग के प्रणेता, बाबाजी भी गुफा में ही रहते थे। किसी हवादार महल या बंगले में नहीं।

कार्बन का आखिर क्या महत्त्व है? तुम लोग यह क्यों कहते हो कि आश्रम नदी के किनारे किसी हवादार स्थान में होना चाहिए, जहाँ पर्याप्त मात्रा में ऑयन्स और ऑक्सीजन हो? जबकि योग की सभी उच्च साधनाएँ गुफाओं में की जाती हैं, क्योंकि वहाँ के बन्द वातावरण की वजह से वहाँ कार्बन की मात्रा अधिक रहती है। मैंने स्पेन के एक पवित्र स्थान, मॉनसेरात का दर्शन किया है, जो अपनी ब्लैक मैडौना के मूर्ति के कारण विश्वप्रसिद्ध है। वहाँ हर रोज हजारों श्रद्धालु मन्नत माँगने जाते हैं। वह एक जाग्रत स्थान है। जैसे हम लोग काली माँ की पूजा करते हैं, वैसे ही वहाँ ब्लैक मैडौना को पूजते हैं।

इस स्थान के बारे में लोग कहते हैं कि कई शताब्दियों पहले एक ईसाई साधु यहाँ रहा करता था। वह मैडौना की एक पत्थर की मूर्ति की पूजा करता था। उसी समय स्पेन में धर्मयुद्ध शुरू हुए, जिस दौरान ईसाइयों के धार्मिक स्थान नष्ट किये जाने लगे। साधु ने उस प्रतिमा को समीपवर्ती गुफा में छुपा दिया, जहाँ वह रहा करता था। एकान्तवास में साधु लोग जैसा किया करते हैं, वह हर रोज अपनी गुफा में आग जलाता था। आग के धुएँ से वह मूर्ति काली होती गई। कालान्तर में वह साधु मर गया, और उस मूर्ति के बारे में किसी को याद नहीं रहा। कई सदियों बाद, जब स्पेन में ईसाई मत की पुनर्स्थापना हो गई, संयोग से वह मूर्ति उस गुफा में पाई गई।

मूर्ति लकड़ी के धुएँ से काली हो गई थी, इसलिए लोग उसे ब्लैक मैडौना कहने लगे। वह मॉनसेरात नामक पहाड़ी के शिखर पर स्थापित है। 'ब्लैक

मैडौना' शब्द को बड़ी आसानी से संस्कृत में अनुवाद कर काली माता कह सकते हैं। ब्लैक मैडौना और काली माँ की अवधारणा में भेद करने की जरूरत नहीं, क्योंकि दोनों मातृशक्ति के प्रतीक हैं। आज वहाँ एक बहुत बड़ा गिरजाघर है। ठीक मध्याह्न के समय वहाँ बड़ी-सी घण्टी को बजाया जाता है, और दूर-दूर से आए हजारों भक्तजन दोपहर की पूजा के लिए एकत्र होते हैं। यह स्थान बार्सिलोना से करीब साठ मील दूर है।

मैं योग और आध्यात्मिक साधना के लिए गुफाओं की उपयोगिता की चर्चा कर रहा था। केवल यौगिक परम्परा में ही नहीं, ईसाई परम्परा से जुड़े अनेक साधु-सन्तों के जीवन में भी गुफाओं का बड़ा महत्त्व रहा है। इसलिए ऑक्सीजन के बारे में ज्यादा बात मत करो। जब तुम क्रिया योग का अभ्यास करते हो तब ऊर्जा की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। ऐसे में तुम उसे कैसे संतुलित करोगे, ऑक्सीजन से या कार्बन से? अगर मस्तिष्क में जरूरत से ज्यादा ऑक्सीजन भर जाने के कारण तुम रात को सो नहीं पाते, तो सोने के लिए तुम्हें किसकी जरूरत पड़ेगी, ऑक्सीजन की या कार्बन की? इसलिए मेरे साथ ग्रीनहाउस गैसों या ग्लोबल वॉर्मिंग की चर्चा न ही करो तो अच्छा है। इस मामले में जितने भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा रहे हैं, वे विज्ञान से नहीं, राजनीति, व्यापार और मुनाफे से प्रेरित हैं। हाँ, इतना जरूर है कि किसी भी चीज की अति नहीं होनी चाहिए। जिस तरह बहुत अधिक ऑक्सीजन से नुकसान हो सकता है, उसी तरह बहुत अधिक कार्बन से भी।

स्वामी सत्यानन्द का जन्म

यह मेरा पहला जन्मदिन है जिसे मैं मना रहा हूँ, क्योंकि मेरा मानना है कि मनुष्य का जन्म एक ही बार होता है। सन् 1923 में, जिस साल मैं पैदा हुआ था, ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति वही थी जो कल 24 दिसम्बर, 2008 को थी। मैं 24 दिसम्बर, 1923 को, रात के बारह बजकर चार मिनट के समय पैदा हुआ था। देखा जाए तो बारह बजकर चार मिनट 25 दिसम्बर की तारीख हुई, लेकिन ज्योतिष शास्त्र के अनुसार, जो चन्द्र की गति पर आधारित है, वह 24 की तिथि थी।

अभी 25 तारीख की सुबह है। रात के 12.04 बजे पूर्णिमा शुरू हो चुकी थी। इसे अगहन पूर्णिमा या मार्गशीर्ष पूर्णिमा कहते हैं। रात के 12.04 बजे, जो मेरे जन्म का समय है, पूर्णिमा कुछ आगे बढ़ गई थी, और चन्द्र की इस

स्थिति को प्रतिपदा कहते हैं। यह पौष महीने के कृष्ण पक्ष की पहली तिथि है। पाश्चात्य ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस समय सूर्य धनु राशि से गुजरता है।

आप में से कई लोग ईसाई हो, लेकिन मेरे इस प्रश्न का बुरा नहीं मानना कि ईसा मसीह वास्तव में धनु राशि में पैदा हुए थे या नहीं। क्या उनका जन्म वास्तव में दिसम्बर महीने में हुआ था? मैंने जितने भी साहित्यों का अध्ययन किया और इस विषय पर जितना भी चिन्तन किया है, उसका निष्कर्ष यही निकला कि ईसा मसीह का जन्म सितम्बर महीने में हुआ था। उनकी राशि कन्या थी। कई बार मुझे लगता है कि इतिहास एक बात बोलता है और परम्पराएँ दूसरी बात। कौन सही है और कौन गलत? खैर हम एक ऐसी शताब्दी में जी रहे हैं जहाँ हमें स्वतंत्र चिंतन की पूरी छूट है।

मेरी अपनी स्वतंत्र सोच है, जो तुम्हारी सोच से अलग हो सकती है। जब मैं गहराई से सोचने लगता हूँ, तो संदेह करने लगता हूँ, क्या ईसा मसीह वास्तव में दिसम्बर में पैदा हुए थे, या सितम्बर में? उनकी राशि धनु थी या कन्या? इन दोनों राशियों में पैदा हुए जातकों का स्वभाव और प्रकृति बिल्कुल अलग होती है। किसी अच्छे ज्योतिषी से पूछ लेना, वह मेरे से ज्यादा विस्तार में बतला देगा। हो सकता है तुम में से कुछ ज्योतिषी हों, और इस बात को पहले से जानते हों। धनु राशि में जन्मे लोगों का अपना एक विशिष्ट स्वभाव होता है न? जबकि कन्या राशि वालों का अलग स्वभाव होता है। इस राशि का चिह्न एक कुमारी कन्या है। ईसा मसीह की माँ भी एक कुमारी कन्या थी। यह संयोगमात्र नहीं। एक शुद्ध, पवित्र माँ से ही पवित्र पुत्र पैदा होता है। अगर तुम ऐतिहासिक या धार्मिक परम्पराओं से प्रभावित हुए बगैर इस विषय पर स्वतंत्र चिंतन करोगे, तो इसी नतीजे पर पहुँचोगे कि ईसा मसीह का चरित्र कन्या राशि से सबसे ज्यादा मेल खाता है।

तो जैसा मैं कह रहा था, मेरा जन्म सन् 1923 के अगहन महीने में रात के 12.04 बजे हुआ था, और आज पचासी साल बाद, मेरे जीवन में दुबारा वैसी ही खगोलीय स्थिति आई है। और मैंने अपने जन्मदिन की घोषणा क्यों की? इसके पीछे भी एक कहानी है। जब मैं मुंगेर में रहता था, तब कुछ लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि मेरा जन्म 26 जुलाई, 1923 को हुआ था। उन्होंने ऐसा सिर्फ कहा नहीं, कई किताबों में छपवा भी दिया। 26 जुलाई! नहीं, यह सम्भव नहीं, क्योंकि यह सिंह राशि है। मैं सिंह की तरह अहंकारी नहीं। और वैसे भी सिंह केवल एक ही चीज खाता है, मैं तो कुछ भी खा सकता हूँ।

इडली, डोसा, साम्भर, चटनी, आलू-पूड़ी, खिचड़ी – सब कुछ खा सकता हूँ। तब मैं सिंह के समान कैसे हुआ? नहीं, मेरा स्वभाव सिंह जैसा नहीं, मैं तो एक धनुर्धर की तरह एकाग्र और दत्तचित्त हूँ। मैं केवल एक चीज के बारे में सोचता हूँ, दो के बारे में नहीं।

मैंने स्वामी निरंजन से कहा कि जिससे पहले यह गलत तिथि हमारी परम्परा, इतिहास और सम्प्रदाय का अंग बन जाए, मेरी वास्तविक जन्म तिथि को उद्घाटित करना जरूरी है। ऐसा न हो कि सम्प्रदाय में यह तथ्य स्थापित हो जाए कि स्वामी सत्यानन्द का जन्म 26 जुलाई को हुआ था, और फिर सब लोग कहेंगे कि स्वामीजी सिंह राशि में जन्मे थे।

अब उस गलती को सुधार दिया गया है। मनुष्य के जन्म की तिथि और समय बहुत महत्त्व रखते हैं, क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य को एक विशेष प्रयोजन के लिए बनाया है। हम किसी दुर्घटना के परिणाम नहीं हैं। हमारे जन्म का एक निश्चित उद्देश्य है। पर यह उद्देश्य क्या है? इस मानव शरीर का, इस मानव जीवन का वास्तविक प्रयोजन क्या है?

सबसे पहले तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि किसी स्थान और समय विशेष में जन्मा मनुष्य एक पदार्थ है। तुम एक विशेष समय में जन्मे, एक विशेष स्थान पर जन्मे, और तुम एक पदार्थ हो। देश, काल और पदार्थ, ये प्रकृति की, मन की, विज्ञान की तीन श्रेणियाँ हैं। हर पदार्थ में, हर वस्तु में, हर शरीर में देश और काल निहित है। देश और काल के बिना किसी पदार्थ की सृष्टि सम्भव नहीं। देश और काल प्रकृति की दो भुजाएँ हैं, जो समस्त सृष्टि में व्याप्त हैं। और दोनों हमेशा विपरीत दिशा में चलते हैं।

वास्तव में देश और काल की दो गतियाँ हैं। या तो वे एक-दूसरे से दूर जाते हैं, या फिर समीप आते हैं। जब वे समीप आते हैं तो इसे योग की संज्ञा दी जाती है, और जब दूर होते हैं तो भोग। जब देश और काल एक-दूसरे की ओर बढ़ते हैं और एक बिन्दु पर आकर मिलते हैं, तो विस्फोट होता है। तुम्हार जन्म दिक्काल में हुए ऐसे एक विस्फोट का परिणाम है। बेशक तुम अपने माँ-बाप के भौतिक संयोग से पैदा हुए, लेकिन तुम्हारे जन्म के पीछे क्या यही एकमात्र प्रक्रिया है? बिल्कुल नहीं। यह शरीर भले ही भौतिक स्तर पर रक्त, मांस, मज्जा आदि से बना है, लेकिन सूक्ष्म स्तर पर पंच तत्त्वों से निर्मित है। अत्यन्त सूक्ष्म ऊर्जा प्रणाली से चालित यह अद्भुत यंत्र आत्मा का निवास-स्थान है। इसका निर्माण ऐसी प्रक्रियाओं से होता है, जो ब्रह्माण्डीय स्तर पर क्रियाशील हैं।

देश और काल का यही विस्फोट तुम्हारे मन में भी होता है, जब तुम ध्यान में सफल होते हो, और देश और काल की गति को विपरीत करके बिन्दु में एकाकार करते हो है। परमाणु विज्ञान में भी यही विस्फोट होता है। वैज्ञानिकों ने इस पर अनुसंधान तब शुरू किया जब उन्हें पता चला कि अणु-परमाणु अविभाज्य नहीं हैं। उन्हें विभाजित करके परमाणु ऊर्जा पैदा की जा सकती है। जो परमाणु विज्ञान की जानकारी रखते हैं, उन्हें शायद फ्यूज़न के बारे में मालूम होगा, जिसमें देश और काल को एक-दूसरे की ओर लाया जाता है। इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में एक बहुत बड़ा अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान चल रहा है, जहाँ पचीस से ज्यादा देशों ने अपने सबसे बढ़िया वैज्ञानिकों को भेजा है। एक ऐसा कृत्रिम वातावरण तैयार करने के लिए जहाँ देश और काल की गति को विपरीत किया जा सके, उन्हें जबरदस्त रफ्तार से एक बिन्दु पर लाकर टकराया जा सके। वैज्ञानिक लोग प्रकृति की नकल करने का प्रयास कर रहे हैं। उनका पहला प्रयास विफल रहा है। प्रयोग से इतनी ज्यादा गर्मी पैदा हुई कि दुर्घटना की आशंका से उन्हें प्रयोग रद्द करना पड़ा। नहीं तो धरती का विनाश तक सम्भव था।

मनुष्य जन्म का अपना एक महत्त्व है। वह क्या है? तुम भगवान को नहीं देख सकते। तुम केवल उसके बारे में बातें कर सकते हो। ठीक है, बातें करते जाओ। वह सर्वव्यापी है, वह सर्वज्ञ है, वह सर्वशक्तिमान् है। लेकिन इससे तुम्हें भगवान का अनुभव प्राप्त नहीं होगा। सिर्फ बातें करने से तुम उसे देख नहीं सकते। एक अनादि, असीम तत्त्व को इस सीमित मन से अनुभव कर पाना सम्भव नहीं। तुम्हारा शरीर सीमित है, मन सीमित है। तुम भी सीमित हो। तुम अमर नहीं, मर्त्य हो। तुम देश और काल की सीमाओं में बँधे हो। तब तुम उस असीम भगवान की कल्पना कैसे कर सकते हो? उसका अनुभव कैसे कर सकते हो?

उस महान् भगवान को अपने भीतर अनुभव करना सम्भव है। इसीलिए भगवान ने तुम्हें बनाया ताकि अपने शरीर, मन और बुद्धि की चेतना से दूर, बहुत दूर, अपने हृदय की गहराइयों में तुम उसे खोज सको, पा सको। चेतना के हर उस रूप-स्वरूप के परे, जिसके प्रति तुम सजग हो सकते हो, एक ऐसी चेतना है जिसे ब्रह्म, परमात्मा या भगवान कहते हैं। यह चेतना तुम्हारे भीतर कहीं छिपी है। इस भौतिक शरीर के अन्दर सम्पूर्ण मानवता का अनुभव किया जा सकता है, और मानव जीवन का यही वास्तविक प्रयोजन है। इसीलिए मैं

एक विशेष दिन, एक विशेष समय पर पैदा हुआ।



अब यह तुम्हारे ऊपर है कि तुम अपना जन्मदिन कैसे मनाओ। लेकिन जन्मदिन मनाते समय एक बात का ध्यान जरूर रखो – मनुष्य के रूप में तुम्हारा जन्म एक सामान्य-सा भोगमय जीवन बिताने के लिए नहीं, बल्कि अपनी चेतना की गहराई, चेतना की ऊँचाई, अपनी अंतरात्मा की महानता को जानने के लिए हुआ है। तुम्हारे अन्दर 'कुछ' है, और तुम्हें उसका साक्षात्कार करना है। इसीलिए वेद घोषणा करते हैं, *तत् त्वम् असि*। तुम वही हो, जिसकी चर्चा हम कर रहे हैं। तुम वही शाश्वत ईश्वर हो जिसकी चर्चा वेद करते हैं, बाइबल करती है, कुरान करती है, जिसकी चर्चा लोग अनादि काल से करते आ रहे हैं। तुम ही वह सत्य, तुम ही भगवान हो।

मनुष्य योनि में ही तुम उस चेतना की कल्पना कर सकते हो, उसका अनुभव कर सकते हो। इस सृष्टि में कोई दूसरा प्राणी ऐसा नहीं कर सकता। ऐसा नहीं कि वह चेतना उन प्राणियों में नहीं। एक कुत्ते, गधे, साँप, बंदर, यहाँ तक कि एक पत्थर के टुकड़े में भी उस दिव्यता का स्फुलिंग विद्यमान है, जिसे हम ईश्वर की संज्ञा देते हैं। *ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*– ईश्वर सभी प्राणियों में निहित है, लेकिन वे इसका अनुभव नहीं कर सकते। कुत्ता इसका अनुभव नहीं कर सकता, गधा नहीं कर सकता, पेड़ नहीं कर सकता, समुद्र नहीं कर सकता, पर्वत नहीं कर सकता, सरोवर नहीं कर सकता। पर तुम यह अनुभव प्राप्त कर सकते हो, क्योंकि तुम सजग हो गए हो।

केवल स्वामी सत्यानन्द ही यह बात नहीं कहता कि भगवान तुम्हारे अन्दर है। बाइबल भी कहती है, 'मैं और मेरे पिता एक हैं।' बाइबल में पहले उस पिता की चर्चा होती है जो स्वर्ग में है। यह हमलोगों के विशिष्ट अद्वैत सिद्धान्त

की तरह हुआ। फिर आगे वह कहती है कि मैं और मेरे पिता एक हैं। यह अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है – *अहं ब्रह्मास्मि।* इसलिए ऐसा नहीं सोचना कि केवल मैं यह बात कह रहा हूँ। जिन महापुरुषों को यह अनुभव प्राप्त हुआ है उन्होंने धर्मग्रंथों में यही बात लिख डाली है। और वह कौन-सा अनुभव था जो उन्हें प्राप्त हुआ। 'मैं यह शरीर नहीं, मैं यह मन नहीं, मैं यह प्राण नहीं, मैं यह मर्त्य पदार्थ नहीं, अमर आत्मा हूँ मैं।' मैं चर्चा अपने जन्मदिन की कर रहा हूँ लेकिन साथ ही तुम्हें संकेत दे रहा हूँ कि अपना जन्मदिन किस मानसिकता से मनाना। तुम्हारे जन्म का उद्देश्य मात्र भोग नहीं हो सकता।

एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। जब तुम यहाँ से कोलकाता के लिए रवाना होते हो, तब तुम्हारा प्रयोजन क्या होता है? कोलकाता पहुँचना न? लेकिन रास्ते में तुम चाय-नाश्ता लेते हो, हो सकता है बीड़ी-सिगरेट भी पीते हो। ट्रेन में तुम गाना गाते हो, अपने सहयात्रियों से बातचीत करते हो, सुन्दर दृश्यों का आनन्द लेते हो, लेकिन यह सब तुम्हारे ट्रेन पर चढ़ने का वास्तविक उद्देश्य नहीं। तुम्हारा वास्तविक उद्देश्य अपने गन्तव्य तक पहुँचना है। इसी तरह, इस संसार में तुम्हारे आने का उद्देश्य अपने आपको जानना है, 'मैं कौन हूँ'। बेशक तुम अपनी इस संसार यात्रा का भरपूर आनन्द लो। शादी करो, बच्चे पैदा करो, धन-दौलत कमाओ, जमीन-जायदाद खरीदो, हर तरह का ऐशो-आराम बटोरो। इनका उपभोग करो, मैं इसके खिलाफ नहीं। लेकिन यह तुम्हारे जन्म लेने का वास्तविक प्रयोजन नहीं।

अच्छे कपड़े पहनना, लिपस्टिक-पाउडर लगाना, सुन्दर दिखना, लड़के-लड़कियों से दोस्ती करना – मैं इन सब चीजों का विरोध नहीं कर रहा। मैं तुमसे यह नहीं कहूँगा कि इन भोगों से मुँह मोड़ लो। अगर इन भोगों को चाहते हो तो जरूर भोगो, लेकिन यह तुम्हारे जीवन का लक्ष्य नहीं। तुम्हें इन सब चीजों के लिए यह अमूल्य मनुष्य जीवन नहीं मिला है। भगवान ने तुम्हें ऐसा शरीर दिया है, जो इस दुनिया की सबसे कीमती, सबसे दुर्लभ चीज है। यह भगवान की सबसे उत्कृष्ट रचना है। हाँ, भगवान कभी-कभी रामकृष्ण परमहंस जैसे बेहतर डिज़ाइन भी तैयार कर देते हैं!

भगवान ने यह मनुष्य शरीर रचकर हम पर बहुत बड़ी कृपा की है। यह उनकी असीम करुणा का ही फल है। मनुष्यों को बनाने के बाद उन्होंने सोचा होगा, 'मैं अपने आप को इस मनुष्य के समक्ष कैसे अभिव्यक्त कर सकता हूँ?' उन्होंने कहा होगा, '*अहं अस्मि,* मैं हूँ, और मैं अपने आपको तुम्हारे सामने

उद्घाटित करना चाहता हूँ।' मेरी बात ध्यान से सुनना। भगवान कह रहे हैं, 'मैं इस छोकरे के सामने प्रकट होना चाह रहा हूँ, पर यह मेरी ओर देखता ही नहीं। इसकी नज़र तो सिर्फ छोकरी पर, धन-दौलत पर, ऐशो-आराम पर टिकी है।'

यह वैसी ही बात हो गई जैसे इस कमरे में कोई भूत-प्रेत हो, जो चाहे कि मैं उससे बात करूँ। पर वह प्रेत योनि में है, मेरा मन उसकी फ्रीक्वेन्सी पर नहीं है। वह मुझे यहाँ बैठे हुए देख सकता है। वह कहता है, 'स्वामी सत्यानन्द, जागो!' लेकिन स्वामी सत्यानन्द उसकी बात नहीं सुनता। वह सुन ही नहीं सकता, क्योंकि वह दूसरी फ्रीक्वेन्सी पर काम कर रहा है। इसी तरह भगवान भी कहते हैं, 'मैं अपने आप को इन लोगों के सामने प्रत्यक्ष करना चाहता हूँ।' वे कई उपाय लगाते हैं लेकिन उन्हें कोई जवाब नहीं मिलता, क्योंकि हमलोगों के बीच तारतम्यता नहीं। उनकी आवाज़ को सुनने के लिए अपने आपको ट्यून करने की आवश्यकता है।

भगवान अनादिकाल से बड़े धैर्य और लगन के साथ यही काम करते आए हैं। और कभी-कभी ईसा मसीह, रामकृष्ण परमहंस, ऋषि वशिष्ठ या विश्वामित्र जैसा कोई उन्हें सुन लेता है। जब ईसा मसीह को भगवान का अनुभव हुआ, तो वे बोल पड़े, 'हे स्वर्ग में रहने वाले परमपिता!' रामकृष्ण को माँ काली में भगवान का अनुभव हुआ। वे देवी माँ से बातें किया करते थे, और देवी उन्हें जवाब भी देती थीं। ऐसा अनुभव अनेक महात्माओं को हुआ है। उन्हें पता चल गया कि भगवान का अनुभव, भगवान का साक्षात्कार सम्भव है। उनकी वाणी को सुनना सम्भव है। जब उन्होंने भगवान से बातचीत शुरू की होगी तो भगवान ने उन्हें दूसरों को बतलाने, दूसरों को समझाने का दायित्व सौंपा होगा। भगवान ने कहा होगा, 'देखो रामकृष्ण, तुम इन लोगों को समझाओ ताकि मैं इनसे बात कर सकूँ।' इसीलिए भगवान ने ईसा मसीह को अपने संदेशवाहक के रूप में भेजा। उन्होंने कहा, 'ईशु, तुम धरती पर जाओ और अपने सभी भाई-बन्धुओं को समझाओ।'

ईसा थे तो भगवान के दूत, लेकिन उन्हें एक मामूली-से अपराधी की तरह सूली पर लटका दिया गया। उनका जन्म इस्रायल में हुआ था। अगर वे यहाँ जन्मे होते तो उनका यह हाल नहीं हुआ होता, क्योंकि भारत में संतों को सूली पर नहीं चढ़ाते। हम उनके पैर धोएँगे, उन पर चंदन लगाएँगे, और आवश्यकता पड़ने पर उनके मिशन के लिए ढेर सारा चँदा देंगे। यहाँ पर साधु-संन्यासियों का सम्मान होता है, उनकी देखभाल की जाती है। मैं गलत कह रहा

हूँ क्या? यहाँ लोग हमारी कितनी सहायता करते हैं, हमारी पूजा करते हैं। वे हमें कभी सूली पर नहीं चढ़ायेंगे। भले ही मैं कह दूँ, 'शैव, शाक्त, वैष्णव – ये सभी मत फालतू हैं,' तब भी वे मुझे कुछ नहीं कहेंगे, बल्कि पूजा ही करेंगे।

भगवान ने ईसा को अपने संदेशवाहक के रूप में भेजा। भारत में हम उन्हें मसीहा कहते हैं। जब भगवान ने ईशु से बात की होगी, तो यही कहा होगा, 'चूँकि अब हम बातचीत कर सकते हैं, मैं तुम्हें भगवद्-प्राप्ति का मार्ग बताऊँगा और तुम धरती पर मेरा यह संदेश फैलाना।' भगवान ने इस तरह कई संत-महात्माओं से बात की है। कहते हैं उन्होंने हज़रत मुहम्मद से बात की। देवी ने रामकृष्ण से बात की। भगवान इतने दयालु हैं कि वे अपने आपको तुम्हारे सामने प्रकट कर देना चाहते हैं। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि तुम अपने आपको ईश्वर के साथ ट्यून करो। प्रभु तुम्हारे साथ बात करना चाहते हैं। वे अपने आपको अनावृत करने के लिए आतुर हैं, क्योंकि आखिर वे भी कब तक अकेला रहना पसंद करेंगे। उपनिषद् में लिखा भी है, *एकोऽहं* – मैं एक हूँ, *बहुस्याम्* – अनेक हो जाऊँ।

अगर यह सत्य है, तब तो मेरा जन्मदिन बहुत अहमियत रखता है। यह मुझे इस बात की याद दिलाता है कि आज से पचासी साल पहले, भगवान ने मुझे बनाया, इस उद्देश्य से कि मैं उनसे बात कर सकूँ, वे मेरे लिए अज्ञात न रहें। जब मैं पैदा हुआ तो मेरी माँ ने मेरा माथा चूमा, मुझे दूध पिलाया, मुझे इतना प्यार दिया कि अगर मैं कहता, 'मम्मी, मैं भगवान से बात करना चाहता हूँ', तो वह एकदम घबरा जाती। वह कहती, 'हे भगवान! शादी के इतने सालों के बाद तो एक लड़का हुआ, और वह भी भगवान के पीछे भाग रहा है। मैं इसे खोना नहीं चाहती।'

मैं इस धरती पर प्रभु के लिए ही आया और अगर मैं उनके पीछे भागता हूँ तो इसमें हर्ज ही क्या? मैं उसी के पास जा रहा हूँ जिसने मुझे यहाँ भेजा। भगवान ही हमारे अंतिम आश्रय हैं, हमारे परम धाम हैं। उन्हीं के दिव्य धाम से हम आए हैं, और वहीं हमें लौटना है। फिर भी मेरी माँ इतनी भयभीत रहती है कि कहीं उसका लाडला बेटा भगवान के लिए उसे छोड़ न दे। अरे! उसे तो खुश होना चाहिए कि बेटे को इतनी समझ आ गई। लेकिन वह घबराती है, क्योंकि बच्चे अपनी माँ के लिए खिलौने होते हैं। माताएँ अपने बच्चे के जन्म के वास्तविक प्रयोजन की अवहेलना कर देती हैं, क्योंकि वे मोह और आसक्ति से ग्रस्त हो जाती हैं। जैसे ही उनके मन में यह विचार आता है कि

बच्चा शादी करने के बजाय घर छोड़ देगा और सर मुड़ाकर संन्यासी बन जाएगा, वे थर-थर काँपने लगती हैं। इसीलिए वे बहुत बड़ा मायाजाल रचती हैं, धोखाधड़ी करती हैं, ताकि वे अपनी संतान को ज्यादा-से-ज्यादा देर तक मोहग्रस्त रख सकें। यही बुद्ध के साथ भी किया था।

गौतम बुद्ध की कहानी तो आप लोग जानते ही होंगे। उनका जन्म ऐसे शुभ योग में हुआ था कि सभी ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की – यह बालक अवश्य अध्यात्म की ऊँचाइयों तक पहुँचेगा। इसलिए उनके माता-पिता ने उन्हें भोग और ऐश्वर्य में कैद रखा। जरा, व्याधि और मृत्यु जैसी जीवन की सच्चाइयों से दूर रखा। उन्होंने गौतम के लिए सुन्दर महल बनाए, उनकी शादी एक सुन्दर राजकुमारी, यशोधरा से करवा दी, और चौबीसों घण्टे उन्हें कंचन-कामिनी, नृत्य-संगीत के जाल में फँसाये रखा। लेकिन अंत में बुद्ध ने अपना राजसी जीवन त्याग दिया और भगवान की खोज में निकल पड़े। कुछ भी उन्हें रोक न सका, यहाँ तक कि उनके नवजात शिशु का मोह भी।

हम सब के जीवन की भी कुछ ऐसी ही कहानी है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य ऐशो-आराम और भोग-विलास की क्षणभंगुर चीजों के पीछे भागना नहीं है। वे तुम्हें जरूर प्रदान की जाएँगी। चिन्ता मत करो। लेकिन तुम्हारा अंतिम लक्ष्य वह चाय, मूँगफली, सिगरेट, अखबार या गपशप नहीं, जो तुम्हारे ट्रेन के सफर के अंग बनते हैं। नहीं, वह सब तुम्हारा लक्ष्य नहीं। वे तो केवल समय काटने के साधन हैं। असली ध्येय तो अपने गन्तव्य तक पहुँचना है।

जीवन का अंतिम लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है। अपने आप को जानना। तुम यह शरीर नहीं हो। स्वामी शिवानन्द कहा करते थे, 'तुम मन नहीं हो, तुम इन्द्रियाँ नहीं हो, तुम पंच तत्त्व नहीं हो, तुम प्रकृति के तीन गुण नहीं हो। तुम इन सब के परे हो। तुम्हें द्वैत के परे जाना है।' इस द्वैत भाव को कैसे लाँघा जाए, जिसे हम दिन-रात अनुभव करते हैं? सबसे पहले, किसी गुरु की शरण में जाओ, और उनसे मंत्र प्राप्त करो। फिर उसका अभ्यास करते जाओ। तुम किसी भाषा को कैसे सीखते हो? सबसे पहले क-ख-ग का अक्षरज्ञान होता है, फिर शब्द, फिर वाक्य, फिर लेख, फिर समूचा साहित्य सीखते हो। आध्यात्मिक जीवन में भी इसी तरह का क्रमबद्ध विकास होता है। शुरुआत गुरु मंत्र से होती है, जो आध्यात्मिक जीवन की प्राथमिक कक्षा है। और अपनी इस आध्यात्मिक यात्रा में हड़बड़ी नहीं करनी है।

हो सकता है तुम्हें आगे बढ़ने में एक साल लगे, या दो या पाँच या बीस या तीस या चालीस या पचास साल। सम्भव है कि पूरा जीवन ही बीत जाए। लेकिन अगले जन्म में तुम अपनी यात्रा वहीं से दुबारा शुरू कर सकते हो, क्योंकि भगवान ने अनेकों जन्मों की व्यवस्था कर रखी है। जिस तरह तुम्हारी शिक्षा प्रणाली में अनेकों स्तर हैं, पहले प्राइमरी क्लास, फिर सेकेण्डरी क्लास, फिर इंटरमिडियेट, फिर ग्रेजुएशन, फिर पोस्ट-ग्रेजुएशन, उसी तरह भगवान ने भी तुम्हें कई जन्म दे रखे हैं। इस बात पर संदेह नहीं करना। मैं शास्त्रों में पढ़ी या संत-महात्माओं से सुनी बातों के आधार पर नहीं, अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। यह मेरा पहला और आखिरी जन्म नहीं है। इस जीवन के आगे भी जीवन है। मैं दुबारा जन्म लूँगा, तुम भी दुबारा जन्म लोगे। यही सत्य है। कर्म एक वास्तविकता है, जीवन एक वास्तविकता है। जब देश, काल और पदार्थ में निरन्तरता है, तब जीवन में निरन्तरता क्यों न हो? सीधी-सी बात है। जब ये सब चीजें निरन्तर हैं तो भला मैं निरन्तर क्यों नहीं? मृत्यु के साथ मेरा ही अंत क्यों?

मृत्यु तो मात्र एक वाक्य का पूर्ण-विराम है, किताब का अंत नहीं। यह एक अध्याय का अंत हो सकता है, लेकिन पूरी किताब का हरगिज़ नहीं। तुम्हें अनेक अवसर मिलेंगे। गुरु और गुरु-मंत्र के साथ शुरुआत करो। गलत विचारों और भ्रान्तियों के भँवर से बचकर रहो। यह मत सोचो कि मुझे सिद्ध गुरु ही मिलना चाहिए। सिद्ध गुरु का मतलब भी जानते हो क्या?

स्कूल में पढ़ने वाला छोटा-सा बच्चा अगर कहे, 'मुझे डॉक्टरेट की डिग्री चाहिए,' तो मैं उससे कहूँगा, 'बेटे, तुम्हें डॉक्टरेट की डिग्री की अभी कोई जरूरत नहीं। तुम्हें ऐसा मास्टर चाहिए जो तुम्हें क-ख-ग सिखा सके।' आध्यात्मिक जीवन में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। कई बार लोग मुझसे कहते हैं, 'स्वामीजी, मुझे सिद्ध गुरु कहाँ मिलेंगे?' अरे! पहले तुम अपने आपको सुधारो, सिद्ध बनाओ, तब जाकर तुम्हें सिद्ध गुरु मिलेंगे। तुम पढ़ रहे हो प्राइमरी स्कूल की सबसे छोटी क्लास में, और चाहते हो कि कॉलेज का प्रोफेसर आकर तुम्हें पढ़ाए! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा बुद्ध या ईसा मसीह तुम्हें सिखाने नहीं आएँगे। इसलिए किसी भी गुरु की शरण में चले जाओ। मुझे गुरु बना लो, कोई समस्या नहीं। पर इतना जरूर है कि सन् 1988 से मैंने यह काम छोड़ दिया है। मैं सेवा-निवृत्त हो गया हूँ, अब इस मामले में तुम्हारी मदद नहीं कर सकता।

सत्संग

18 फरवरी 2009



कर्म संन्यासी और पूर्ण संन्यासी में क्या अंतर होता है?

कर्म संन्यासी वह व्यक्ति है, जो अपने सामान्य जीवन में पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, बहन, भाई, मित्र, कर्मचारी, अधिकारी या व्यवसायी की भूमिका निभाते हुए भी आध्यात्मिक जीवन की ओर धीरे-धीरे उन्मुख होता जाता है। जबकि पूर्ण संन्यासी समाज और सभी सामाजिक सम्बन्धों को तिलांजलि देकर, अकेले रहते हुए अपने जीवन को आध्यात्मिक चेतना के विकास के लिए समर्पित कर देता है। संन्यासी जो कुछ भी करे, वह इसी उद्देश्य की

पूर्ति के लिए होना चाहिए। कर्म संन्यासी और पूर्ण संन्यासी में यही मौलिक अंतर है।

यह अवधारणा और प्रथा ईसाइयों में भी पाई जाती है। ईसाई परम्परा में पादरी और नन पूर्ण संन्यास के प्रतीक हैं, और एक साधारण आदमी, जिसे बपतिस्मा संस्कार से ईसाई धर्म में दीक्षित किया जाता है, कर्म संन्यास का। तुम ईसाई के रूप में पैदा नहीं होते, केवल एक मनुष्य के रूप में जन्म लेते हो। लेकिन जब तुम्हें लगता है कि तुम एक आध्यात्मिक, एक धार्मिक जीवन बिताना चाहते हो तब तुम बपतिस्मा पाने के लिए आते हो। और बपतिस्मा के बाद तुम एक ईसाई कहलाते हो। तब तुम अपनी माला जपते हो, बाइबल पढ़ते हो, चर्च जाते हो।

किसी पादरी या नन को कुछ व्रत, कुछ संकल्प लेने पढ़ते हैं। यह पूर्ण संन्यास जैसा ही है। लेकिन यह याद रखो कि पूर्ण संन्यासी अपनी चेतना के उत्थान के लिए ही जीता है। वह समाज-सुधारक नहीं होता, भले ही उसके माध्यम से समाज में अनेक सुधार स्वत: हो जाएँ। वह धर्मयोद्धा नहीं होता, धर्म के लिए लड़ाइयाँ नहीं लड़ता। हाँ एक आध्यात्मिक परम्परा को जीवित रखने के लिए संघर्ष अवश्य करता है। कई बार राजनैतिक उथल-पुथल की वजह से धार्मिक परम्पराओं का पतन शुरू हो जाता है, और ऐसे समय पादरी, भिक्षु और संन्यासी अपने धर्मपथ से च्युत होने लगते हैं। अपनी आध्यात्मिक यात्रा और साधना पर ध्यान देने की बजाय वे धर्मयोद्धा बन जाते हैं।

इसलिए पादरी या संन्यासी भी दो श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं। पहली श्रेणी में वे हैं जो संत फ्रांसिस या ज़ेवियर जैसी विभूतियों के बताये रास्ते पर चलते हैं। वे एकान्त में रहते हैं। जप, तप और ध्यान में लीन रहते हैं। ऐसे साधकों का जीवन बहुत सहज और सरल होता है। ऐसे साधक वास्तव में पूर्ण संन्यासी हैं।

दूसरी श्रेणी में ऐसे संन्यासी आते हैं जो धर्म का प्रचार या समाज-सुधार करते हुए जगह-जगह घूमते हैं। समाज के साथ निरंतर सम्पर्क के कारण वे कई बार पथभ्रष्ट हो जाते हैं। आत्मज्ञान की बजाय उनका उनका लक्ष्य धर्म का प्रचार हो जाता है। ऐसी मानसिकता ईसाई मत तक ही सीमित नहीं। वैदिक धर्म के अनुयायियों में भी यह देखा जाता है। एकान्त, सरलता, सहजता, ब्रह्मचर्य, तपस्या और ध्यान से युक्त आध्यात्मिक जीवन जीने की बजाय संन्यासी समाज-सुधारक, धर्मगुरु और आचार्य बन जाते हैं। यहाँ भी पतन होने लगता है।

संसार में रहते हुए भी संन्यास का अनुशासन कायम रखना पड़ता है। यही एक पूर्ण संन्यासी का लक्षण है, धर्म है। मैंने इसका पालन किया है। जब मैं दुनियाभर में घूमते हुए योग सिखा रहा था, तब भी मैं पूर्ण संन्यासी ही था। अब मैं योग नहीं सिखाता, सभी संस्थागत क्रिया-कलापों से निवृत्त हो चुका हूँ। अब भी मैं पूर्ण संन्यासी हूँ। दोनों परिस्थितियों में मैं पूर्ण संन्यास के मार्ग पर ही रहा। अंतर केवल इतना है कि तब मैं सक्रिय संन्यासी था, अब निष्क्रिय हूँ।

जब तुम गृहस्थ के रूप में किसी गुरु से कर्म संन्यास की दीक्षा लेते हो, तुम्हारे सामाजिक दायित्व, तुम्हारी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ बरकरार रहती हैं। तुम्हारे सम्बन्ध, महत्त्वाकांक्षाएँ, कल्पनाएँ, इच्छाएँ, वासनाएँ, सुख और दुःख, सभी रहते हैं। तुम कर्मों के जाल में फँसे हो और इसका तुम पर प्रभाव पड़ता है। यह अवश्यम्भावी है, कर्म के प्रभाव से कोई बच नहीं सकता। कर्म के प्रभावों के साथ तुम कैसे जूझते हो, उन्हें कैसे सम्भालते हो, इसी से पता चलता है कि तुम कर्म संन्यासी हो या नहीं।

कर्म संन्यासी के लिए समझने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है। कर्म संन्यासियों को कर्मों का त्याग नहीं करना है। उन्हें जीवन की मजबूरियों की उपेक्षा करने की जरूरत नहीं। ऐसा हरगिज नहीं करना चाहिए। एक गृहस्थ के लिए जीवन की कौन-सी मजबूरियाँ हैं? लोभ, वासना, क्रोध, ईर्ष्या, राग और द्वेष। तुम न तो इनसे भाग सकते हो, न ही भागना चाहिए। अगर इनसे भागने की कोशिश करोगे, तो ये शारीरिक रोग, मानसिक बीमारी या व्यक्तित्व में किसी असंतुलन या दोष के रूप में व्यक्त होंगी।

कर्म संन्यासी को जीवन की इन मजबूरियों से पलायन नहीं करना चाहिए। आखिर इन्हें प्रकृति ने ही तो बनाया है। लेकिन साथ ही यह भी समझना चाहिए कि व्यक्तित्व पर इनका असर पड़ता है। लोभ का असर पड़ता है, वासना का असर पड़ता है, ईर्ष्या का असर पड़ता है। कर्म संन्यास उस असर को झेलना सिखाता है। अगर तुम प्रकृति के नियमों से उपजे प्रभावों को झेल पाते हो, तो तुम सच्चे कर्म संन्यासी हो।

तुम्हारा प्रश्न वही है जिसे अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सामने आज से पाँच हजार साल पहले रखा था। संसार में रहते हुए, कर्मों में संलग्न रहते हुए भी कोई आध्यात्मिक मार्ग में आगे कैसे बढ़ सकता है? सद्‌गृहस्थ के रूप में तुम आध्यात्मिक विकास और उन्नति चाहते हो। लेकिन तुम अपने जीवन में ऐसी बाधाओं और समस्याओं का सामना करते हो, जो आध्यात्मिक मार्ग से



विचलित कर देती हैं। कौन-सी समस्याओं का आए-दिन सामना करते हो? जिम्मेदारी समस्या नहीं है। दायित्व समस्या नहीं है। काम-धंधा समस्या नहीं है। न ही पति, पत्नी या बच्चे समस्या हैं। आखिर वह कौन-सी समस्या है जिसे तुम जीवन में अनुभव करते हो?

समस्या उन कर्मों से नहीं होती, जिन्हें तुम रोज करते हो। समस्या होती है उन कर्मों के प्रभाव से। हर कर्म तुम्हारे ऊपर एक साइड-इफेक्ट छोड़ जाता है। किसी सगे-सम्बन्धी या प्रियजन की मृत्यु हो जाती है। यह तुम्हारे ऊपर ऐसा असर छोड़ जाती है, जो हटाये नहीं हटता। तुम्हारी नौकरी चली जाती है। तुम पर जबरदस्त असर होता है। तुम चिन्ता, तनाव और परेशानी से घिर जाते हो। ऐसी हजारों-लाखों परिस्थितियाँ घटती हैं जो अपना असर छोड़ते जाती हैं। तुम अपने कर्मों के इन प्रभावों को कैसे सम्भालोगे? कर्म संन्यासी को इसी के बारे में सोचना चाहिए। उसे प्रतिरोधक क्षमता का विकास करना चाहिए ताकि वह कर्मों के दुष्प्रभावों को आसानी से झेल सके।

पूर्ण संन्यासी के लिए बात दूसरी है, क्योंकि वह कर्म का परित्याग कर देता है। वह बिना किसी जिम्मेदारी या दायित्व के जीता है। वह किसी के प्रति

उत्तरदायी नहीं। उसका एकमात्र दायित्व आंतरिक सजगता का विकास है। इसके लिए वह चाहे किसी आश्रम में रहे या परिव्राजक के रूप में या कहीं एकान्तवास में। जैसा उसके गुरु का आदेश हो। पूर्ण संन्यास निवृत्ति का संकीर्ण पथ है। यह केवल उन गिने-चुने साधकों के लिए है, जो अपने जीवन को ईश्वर का माध्यम बनाकर जी सकते हैं। कर्म संन्यास प्रवृत्ति का विस्तृत मार्ग है, जो जनसाधारण के लिए है, जिसपर चलकर वे भी अपना विकास और उत्थान कर सकें।

प्रवृत्ति और निवृत्ति के इन दो मार्गों को अच्छी तरह समझने के लिए भगवद्गीता का अध्ययन करना चाहिए। अठारह अध्यायों की इस यात्रा में जीवन का पूरा ब्लूप्रिंट क्रमबद्ध तरीके से उद्घाटित होता जाता है और यह शिक्षा मिलती है कि हम किस प्रकार कीचड़ में खिले कमल की तरह आदर्श कर्म संन्यासी का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। कमल कीचड़ में पैदा होता है, उसी में रहता है और वहीं मुरझा जाता है, लेकिन वह हमेशा कीचड़ से अप्रभावित रहता है। अपनी सुन्दरता और निर्मलता से सभी को आनन्द प्रदान करता है। पूर्ण संन्यास एक आदर्श है, जीवन का ऐसा पड़ाव जहाँ पर मनुष्य तब पहुँचता है जब मन पर कर्मों के प्रभाव की पकड़ ढीली हो जाती है, जब वह स्वयं को राग-द्वेष के चंगुल से मुक्त करने में सफल हो जाता है।

राग और द्वेष ही मनुष्य को सुख और दु:ख के बीच झुलाते रहते हैं। जब मनुष्य में वैराग्य का उदय होता है तब उसमें कर्म के प्रभावों को झेलने की समझ और क्षमता विकसित होती है। कर्म संन्यास संसार में एक अलग दृष्टिकोण अपनाकर जीवन जीने का ढंग है, और पूर्ण संन्यास ईश्वरेच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में जीवन जीने की कला है।

कल स्वामी सत्संगी हमसे कह रही थीं कि जीवन की जितनी घटनाएँ कष्टप्रद और कठिन प्रतीत होती हैं, वास्तव में उनका सामना करना चाहिए। आशा और सकारात्मकता के साथ उनसे समझौता करना चाहिए।

जीवन विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों का मिश्रण है। मिश्रण का मतलब, अच्छे और बुरे, प्रिय और अप्रिय, दोनों तरह के अनुभव। तुम्हें सिर्फ प्रेम चाहिए। तुम घृणा को नहीं स्वीकारते। पर जीवन तो प्रेम और घृणा का मिश्रण है। जब तुम्हारे यहाँ बच्चा पैदा होता है तो तुम्हें खुशी होती है। जब कोई मर

जाता है तो तुम दु:खी हो जाते हो। लेकिन जीवन में तो जन्म और मृत्यु, दोनों आते हैं। तुम मेरे दोस्त बनना चाहते हो, दुश्मन नहीं। मिश्रण को कोई पसन्द नहीं करता। यही हर मनुष्य की समस्या है, और इसीलिए सभी दु:खी और निराश हैं। दु:ख और निराशा इसलिए होती है कि तुम प्रकृति की, जीवन की वास्तविकता को स्वीकार नहीं करना चाहते। भगवान ने सिर्फ उजाला नहीं बनाया, अंधियारा भी बनाया। चाहे तुम भगवान में विश्वास करो या न करो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पर किसी-न-किसी ने तो इस सृष्टि को बनाया न, चाहे उसे प्रकृति कहो या मात्र संयोग। अगर यही मानकर चलो कि प्रेम और घृणा संयोग से उत्पन्न हुए तो भी दोनों को तो स्वीकार करना पड़ेगा न? जब धन आता है, तुम खुश हो जाते हो। जब धन चला जाता है, तुम हताश हो जाते हो। अगर अपने जीवन में शांति और आनन्द का अनुभव करना चाहते हो तो अपने इस दृष्टिकोण को, इस मानसिकता को बदलना होगा।

स्वामीजी, योग विद्यालयों एवं केन्द्रों को विश्व-शांति के एक प्रभावी माध्यम के रूप में स्वीकार किया जा रहा है, और अक्सर हमसे इस विषय पर चर्चा करने के लिए कहा जाता है। ऐसे में स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जिस संसार में इतने संघर्ष, युद्ध और लड़ाइयाँ हैं, वहाँ शांति कैसे लाई जा सकती है?

संघर्ष और शांति परस्पर सम्बन्धित शब्द हैं। जब तुम संघर्ष के बारे में सोचते हो तो शांति का विचार भी अपने आप आता है। जब तक युद्ध नहीं होगा, तब तक शांति भी नहीं होगी। युद्ध का अंत शांति है। शांति की उपज युद्ध से होती है। इसलिए युद्ध और शांति परस्पर अंतर्ग्रथित हैं, जन्म और मृत्यु के जैसे। अगर तुम्हारा जन्म न हो, तो मृत्यु भी नहीं होगी। और अगर तुम्हारी मृत्यु न हो, तो जन्म भी नहीं होगा। पेड़ मरता है, उसके स्थान पर एक नया पेड़ पैदा होता है। जन्म और मृत्यु, युद्ध और शांति का यह प्रश्न तो एक शाश्वत प्रश्न है।

तुम केवल शांति से सम्बन्धित उत्तर की खोज कर रहे हो। तुम सिर्फ शांति क्यों चाहते हो, संघर्ष क्यों नहीं? हर कोई शांति चाहता है, संघर्ष नहीं। यह सम्भव नहीं। तुम्हें युद्ध के बारे में सोचना चाहिए, क्योंकि युद्ध ही सभ्यताओं के अंत का कारण बनते हैं। अगर युद्ध न हों, तो सभ्यताओं का अंत भी नहीं होगा। किसी समय वैदिक सभ्यता का, चीनी सभ्यता का,

इस्लामी सभ्यता का बोलबाला था, लेकिन अब वे नहीं रहीं। क्यों? युद्ध और संघर्ष की वजह से।

अगर संसार में लोग न मरें तो जरा सोचो क्या होगा। न हम मरें, न तुम मरो, बस नए बच्चे पैदा होते जाएँ, तो संसार में रहना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए मृत्यु आवश्यक है। युद्ध भी इसी वजह से आवश्यक है। इसलिए जब हम शांति पर चर्चा करें तो युद्ध और विनाश की भी चर्चा करें। योग में ये दोनों पक्ष होते हैं। योग से अज्ञान का नाश और ज्ञान का जन्म होता है। योग में हमेशा किसी पुरानी चीज का नाश और नई चीज का अभ्युदय होता है।

यूरोपियन लोगों को युद्ध पसंद नहीं क्योंकि उन्हें पिछली सदी में दो महायुद्धों का सामना करना पड़ा है। इसलिए उन्होंने यूरोपियन यूनियन की स्थापना की है, ताकि जर्मनी फ्रांस से न लड़े, फ्रांस इंग्लैण्ड से न लड़े, इंग्लैण्ड बेल्जियम से न लड़े। वे अब एक हैं। लेकिन तुम्हें एक बात याद रखनी चाहिए कि युद्ध की वजह से ही यूरोप ने तरक्की की। आज यूरोप में तुम्हें जो कुछ दिखाई देता है, चाहे वह विज्ञान के क्षेत्र में हो, या शिक्षा, तकनीकी, चिकित्सा अथवा राजनीति के क्षेत्र में, वह सब उन दो महायुद्धों की वजह से है, जो यूरोप में पिछली शताब्दी लड़े गए थे। इसलिए युद्ध और संघर्ष से डरो मत। सभी युद्ध से डरते हैं, लेकिन इस बात को भूल जाते हैं कि दुनिया में सारी उपलब्धि और उन्नति युद्ध की वजह से हुई है।

लोग कहते हैं कि युद्ध होने से अर्थव्यवस्था चौपट हो जाएगी, विकास और तरक्की रुक जाएगी। यह सोच गलत है। यह कायरों की सोच है। हमें सही मार्गदर्शन नहीं मिला है। भगवद्गीता कहती है कि अगर तुम युद्ध में वीरगति प्राप्त करते हो तो तुम्हारा परलोक सिद्ध होगा और अगर तुम युद्ध में विजय प्राप्त करते हो तो इस लोक में यश और कीर्ति मिलेगी।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥2.37॥

युद्ध, संघर्ष और विनाश से बचना असम्भव है, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है। मृत्यु सृष्टि का एक अटल नियम है, जिसे सृष्टिकर्त्ता ने बनाया है। जरा और व्याधि भी सृष्टि का नियम है। और अंधियारा भी। जिस तरह ईश्वर ने प्रकाश बनाया, उसी तरह अंधेरा भी बनाया। जिस तरह उन्होंने हमें जन्म दिया, उसी तरह मृत्यु की भी व्यवस्था की। जिस तरह सुख बनाया, उसी तरह

दु:ख भी बनाया। सुख और दु:ख की अवधारणा तुमने नहीं बनाई। ये शाश्वत सिद्धान्त हैं, जिनका प्रभाव हर व्यक्ति पर पड़ता है। ये सृष्टिकर्त्ता के बनाये अटल सिद्धान्त हैं।

तुम सिर्फ सुख चाहते हो। तुम सुख का उल्टा पक्ष, दु:ख नहीं चाहते। जबकि उसे भी भगवान ने ही बनाया है। तुम्हें सिर्फ जन्म चाहिए, मृत्यु नहीं। यह गलत विचारधारा है। दु:ख झेलने पर ही सुख के महत्त्व को जाना जा सकता है। युद्ध के विनाश को देखकर ही तुम शांति की आवश्यकता को समझ सकते हो। अगर युद्ध ही न हो तो शांति की कामना कौन करेगा? युद्ध की वजह से ही शांति की प्रासंगिकता सिद्ध होती है। युद्ध अनिवार्य इसलिए है कि शांति की स्थापना हो, वर्त्तमान परिस्थिति में परिवर्तन हो। युद्ध की ताण्डव-लीला का अनुभव किये बगैर शांति का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है? अगर मनुष्य की मृत्यु ही न हो तो उसका दुबारा जन्म कैसे होगा? सृष्टि को नियंत्रित करने वाले शाश्वत नियमों का यही निर्णय और निर्देश है। लेकिन जब मानव इन मौलिक सिद्धान्तों को भूल जाता है, या जानबूझकर इनकी अवहेलना करता है, तो उसे दु:ख और परेशानी झेलनी पड़ती है। वरना संसार में दु:ख का कोई कारण नहीं। मृत्यु और व्याधि दु:ख के कारण नहीं। तुम्हारे मन पर उनका जो असर पड़ता है, वही तुम्हारे दु:ख का वास्तविक कारण है।

अगर तुम एक दुकान खोलो और वह न चले, तो तुम्हें थोड़ी कठिनाई जरूर होगी, लेकिन दु:ख तब तक नहीं होगा जब तक उस असफलता का असर तुम्हारे मन पर नहीं पड़ता। अगर तुम्हारा मन विफलता से अप्रभावित रहता है तो तुम बहुत जल्द उस परिस्थिति से उबरकर एक नए सिरे से जीवन शुरू कर सकते हो। ऐसे लोग ही जीवन में सफल और सुखी होते हैं। अमेरिका का राष्ट्रपति बनने से पहले अब्राहम लिंकन को चुनाव में ग्यारह-बारह बार लड़ना पड़ा। लेकिन विफलता से वह दु:खी या निराश नहीं हुआ। इसलिए एक दिन वह कामयाब हुआ। हर विफलता ने उसके संकल्प को और मजबूत बनाया।

अगर तुम्हारी बूढ़ी नानी या दादी, जो लम्बे अरसे से बीमार चल रही है, मर जाए तो तुम्हारे जीवन पर कोई विशेष असर नहीं पड़ने वाला। लेकिन फिर भी तुम दु:खी हो जाते हो क्योंकि उसकी मृत्यु ने तुम्हारे मन पर एक असर, एक छाप छोड़ दी। दूसरी ओर, अगर उसकी मृत्यु पर तुम्हारे मन में

कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, अगर तुम भली-भाँति समझते हो कि मृत्यु एक स्वाभाविक, प्राकृतिक घटना है, जो तुम्हारी दादी के लिए हितकारी भी थी, क्योंकि वह सारा समय बिस्तर पर पड़ी रहती थी, दूसरों की मदद पर मोहताज रहती थी, तो फिर मन में दु:ख नहीं होगा।

जब तुम इस तरह के प्रभावों से मुक्त हो जाते हो, तब तुम जीवन की धारा के साथ बहने लगते हो। तुम यह समझने लगते हो कि विधाता के विधान में जो निर्धारित किया गया है, वह होकर रहेगा। ये घटनाएँ तुम्हारे वश में नहीं हैं। ये सृष्टि के नियामक सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित घटनाएँ हैं। अदालत में न्यायाधीश कानून के अधीन कार्य करता है। भले ही वह किसी को मौत की सज़ा सुना दे, लेकिन उस फैसले से वह अप्रभावित रहता है, क्योंकि निर्णय उसका नहीं, कानून का है। एक डॉक्टर दिन में अनेक मरीजों को मरते देखता है, फिर भी अप्रभावित रहता है, क्योंकि वह शरीर को नियंत्रित करने वाले नियमों को समझता है और यह जानता है कि अगर मरीज की दशा बहुत बिगड़ गई है तो वह कुछ नहीं कर सकता।

इसी तरह युद्ध, संघर्ष, विनाश और मृत्यु पूर्वनिर्धारित हैं। वे होकर रहेंगे। पर तुम्हें उनसे प्रभावित नहीं होना है। यही भगवद्‌गीता की मुख्य शिक्षा है, जो श्रीकृष्ण ने युद्धभूमि में अर्जुन को दी थी। जीवन का सबसे महान् शास्त्र ऐसे भयानक वातावरण में उद्‌घाटित किया गया, जहाँ चारों ओर भीषण अस्त्र-शस्त्र चलने वाले थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जीवन जीने की कला किसी शांत, सुरम्य मंदिर या आश्रम में नहीं सिखाई। उन्होंने यह शिक्षा ऐसे स्थान और समय पर दी, जब अर्जुन मानव इतिहास के सबसे भीषण युद्ध, महाभारत की कगार पर खड़ा था।

दो विशाल, सुसज्जित सेनाएँ आमने-सामने खड़ी थीं। युद्ध का शंखनाद हो चुका था। और तब अर्जुन को घोर विषाद ने आ घेरा, जिसे आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में 'नर्वस ब्रेकडाउन' कहेंगे। अर्जुन डरपोक नहीं था। धरती पर आज तक उस जैसा शूरवीर और निपुण योद्धा नहीं हुआ। उसके विषाद का कारण भय नहीं, मोह और अज्ञान था। उसके सामने जो सेना खड़ी थी, उसमें उसके सगे-सम्बन्धी भरे थे। अपने सामने उसने चाचा, मामा, दादा, भाई, सखा को देखा, जिनके साथ वह बचपन में खेला करता था। उसके अन्दर मिथ्या करुणा की भावना जागी और वह मोहग्रस्त हो गया। आखिर इन्हीं सम्बन्धियों ने तो अर्जुन, उसके भाइयों, उसकी पत्नी और

उसकी माता के साथ घोर अन्याय किया था, अधर्म किया था, अत्याचार किया था। अर्जुन ने भी कसम खाई थी कि वह इनसे युद्ध करके बदला लेगा, लेकिन जब युद्ध का समय आया तो उसके हाथों से पसीना छूटने लगा।

हाँ, आजकल की युद्ध प्रणाली में ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि सब कुछ रिमोट कन्ट्रोल से किया जाता है। जो आदमी बटन दबाता है, उसे अपने कर्म के परिणामों का बिल्कुल अंदाज नहीं होता। अगर वह बटन दबने से सैकड़ों-हजारों लोगों के मरने का दृश्य देख सके, तो उसका भी वही हाल होगा जो अर्जुन का हुआ था। अगर वह उन सैकड़ों बच्चों की कल्पना कर सके जो मरने वाले हैं, या विकलांग होने वाले हैं या अनाथ होने वाले हैं, उन सैकड़ों महिलाओं के बारे में सोच सके जो विधवा होने वाली हैं, वे बूढ़े माँ-बाप जिनकी देखभाल के लिए कोई नहीं रहने वाला, तो उसे भी अर्जुन की तरह नर्वस ब्रेकडाउन हो जाएगा।

अर्जुन के मन में यह प्रश्न इसलिए उठा कि अपने बाल-सखाओं, भाइयों और अन्य सम्बन्धियों का दृश्य उसके सामने था। रोते बच्चे, बिलखती विधवाएँ, दुःखी माँ-बाप – उसे यह सारा नज़ारा दिखाई देने लगा। उसे इस युद्ध की सार्थकता पर संदेह होने लगा। लेकिन फिर भी उसके संदेहपूर्ण मन को यह पूरा विश्वास नहीं हुआ था कि युद्ध वास्तव में गलत है। अगर पूरा विश्वास हो गया होता तो उसने श्रीकृष्ण से प्रश्न नहीं किये होते। सीधे उठकर युद्धभूमि से चला गया होता।

युद्ध सही है यह नहीं, करूँ या न करूँ, इस दुविधा को सुलझाने के लिए श्रीकृष्ण की सहायता माँगना अर्जुन की दोहरी मानसिकता को दर्शाता है। तब युद्धभूमि में, सब योद्धाओं के सामने, श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जीवन के रहस्यों से अवगत कराया। अर्जुन इससे प्रभावित तो हुआ, लेकिन फिर भी उसका मन पूरी तरह नहीं माना। उसने अपने धनुष-बाण को नहीं उठाया, जिसे उसने थोड़ी देर पहले रथ से फेंक दिया था। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान कर, अपना विराट् स्वरूप दिखाया। उसमें अर्जुन ने उन सबकी मृत्यु और नाश देखा जिन्हें वह बचाने की कोशिश कर रहा था। उसने देखा कि वह तो मात्र एक माध्यम है। अपने कुकर्मों के कारण उन सब की मृत्यु उसके हाथों लिखी जा चुकी है।

श्रीकृष्ण ने उससे कहा, 'जब तुम कर्त्ता नहीं हो, तब क्यों अपने पर कर्त्तापन थोपते हो? जब स्वयं पर कर्त्तापन आरोपित करते हो तब तुम अपने



कर्म-फलों से आसक्त हो जाते हो, और वे तुम पर गहरा असर छोड़ जाते हैं। अगर तुम कर्म करते रहो पर कर्म के परिणामों से आसक्त न हो और अपने मन को उनके प्रभावों से मुक्त रखो, तब तुम्हारे सभी कर्म धर्मसंगत होंगे। धर्म और कर्त्तव्य की भावना ही तुम्हारे कर्मों को निर्देशित करेगी।'

तुम लोग भले ही सोच सकते हो कि श्रीकृष्ण, जो भगवान के साक्षात् अवतार थे, अर्जुन को लड़ने और मारने के लिए क्यों प्रेरित कर रहे थे। लेकिन अगर तुम सम्पूर्ण भगवद् गीता का अध्ययन करोगे तो इस तरह के प्रश्न नहीं करोगे। श्रीकृष्ण ने गीता में अत्यन्त निपुणता के साथ जन्म से लेकर मरण तक जीवन का पूरा नक्शा समझाया है। न केवल सज्जन लोगों की रक्षा का कर्त्तव्य समझाया है, दुराचारियों के नाश का कर्त्तव्य भी। अगर तुम्हारे शरीर में कैंसर फैलने लग जाए तो उसे खत्म नहीं करोगे क्या? या उस कैंसर को यह सोचकर बढ़ने दोगे कि कैंसर निकालने से कहीं आसपास के अंगों की क्षति न हो जाए। जो समझ सके, सो समझ ले। भगवद्गीता की मुख्य शिक्षा यही है।

होली

11 मार्च 2009



वास्तविक योग

योग का मतलब होता है, इड़ा और पिंगला का योग, पुरुष और प्रकृति का योग। जीवन में दो शक्तियाँ हैं, एक है प्राण और दूसरी है मन। प्राण पिंगला है, मन इड़ा है। इन्हीं के सायुज्य को योग कहते हैं। आसन-प्राणायाम सम्पूर्ण योग नहीं हैं, योग के मात्र एक विषय हैं, अंग हैं। जैसे शिक्षा जगत् में भूगोल, गणित या राजनीति विभिन्न विषय हैं, उसी तरह योग के क्षेत्र में भी अलग-अलग विभाग और विषय हैं, जैसे, हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, लययोग, क्रियायोग, इत्यादि। लेकिन योग की वास्तविक परिणति

तब होती है जब प्राणिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ आपस में मिलती हैं, एक मिनट के लिए ही सही। जैसे एक कछुआ अपने सभी अंग समेट लेता है उसी तरह अपने मन, इन्द्रियों और सभी वृत्तियों को एक मिनट के लिए समेटकर शून्य बन जाओ। चाहे सबेरे या शाम को। तुम आदमी हो या औरत, हिन्दू हो या मुसलमान, अच्छे हो या बुरे, स्वस्थ हो या बीमार, एक मिनट के लिए सब कुछ भूल जाओ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥2.58॥

जो अपने मन को थोड़ी देर के लिए अन्दर में समेट लेता है, समझ लो कि वह स्थिर बुद्धि वाला है। नहीं तो तुम्हारी बुद्धि स्थिर नहीं है, तुम चंचल हो। स्थिर मन पाने के लिए थोड़ी देर के लिए अपनी इन्द्रियों, विचारों, और पूरी चेतना को समेटना पड़ता है। चाहे प्राणायाम से करो, या धारणा से या क्रियाओं से, इसके हजारों उपाय हैं।

तुम मंदिर या गिरजाघर जाकर पूजा करते हो, 'जय जगदीश हरे' गाते हो, ये सब कर्मकाण्ड हैं। इनको करके भी तुम वहीं के वहीं रहते हो। सीधी बात बोल रहा हूँ। अगर तुम्हारा धर्म कहता है तो यह सब करते रहो। मैं तुम्हारे धर्म की आलोचना नहीं कर रहा हूँ, लेकिन असली चीज यह है कि इस प्रपंची संसार से अपनी पाँचों इन्द्रियों को अपने भीतर समेटना है, थोड़ी देर के लिए ही सही। और यही वास्तविक योग है। मैं जब योग की बात करता हूँ तो मेरा अभिप्राय यही है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः – योग की परिभाषा एकदम स्पष्ट है। चित्त की वृत्तियों के रोकने को योग कहा जाता है। आसन या प्राणायाम योग नहीं, योगांग हैं। जैसे वेद के अंगों को वेदांग कहते हैं, जैसे दाल-सब्जी भोजन नहीं, भोजन के अंग हैं, वैसे ही आसन-प्राणायाम योग के अंग हैं। और इन्हें करना पड़ता है। क्यों? तुम्हारे शरीर में जितनी समस्याएँ हैं, तुम्हारे हॉरमोन्स में, तंत्रिका-तंत्र में जितना असंतुलन है, उसे योगासन से ठीक किया जा सकता है। *स्थिरं सुखमासनम्*। स्थिरं और सुखं – योगासन की ये दो मुख्य परिभाषाएँ हैं। आसनों से तुम्हारा शरीर द्वन्द्वों के आघातों से मुक्त होता है। द्वन्द्व क्या है? गर्मी और सर्दी, सुख और दुःख, जन्म और मरण, ये सभी द्वन्द्व हैं। जीवन में सब जगह द्वन्द्व हैं और इन्हीं की वजह से तुम्हारे शरीर के हॉरमोन्स, आंतरिक

तंत्रों और अंगों में गड़बड़ी पैदा होती है। आसनों से उसे ठीक करो – *ततो द्वन्द्वानभिघात:* – यही आसन की परिभाषा है और इसकी सीमा भी। यह मत कहो कि आसन से तुम भगवान को पा लोगे। इसी तरह प्राणायाम की अपनी अलग भूमिका है। लेकिन अंतिम चीज यह है कि तुम एक-दो मिनट के लिए ही सही, पर प्रतिदिन अपने इन्द्रिय अनुभवों को समेट सको, अपने जीवन के अंतिम दिन तक। तब तुम्हें शायद वह चीज मिलेगी जिसकी तुम तलाश कर रहे हो।

चेतना के विभिन्न आयाम

योग को केवल आसन और प्राणायाम तक सीमित मत करना। यह शरीर केवल हाड़-मांस नहीं है। मन भी है, इन्द्रियाँ भी हैं, चेतना भी है, आत्मा भी है। हमारे अस्तित्व के विभिन्न आयाम हैं। हमारा न केवल भौतिक शरीर है, बल्कि मानसिक, प्राणिक, आध्यात्मिक और दिव्य शरीर भी हैं। हमारे इस शरीर में सात क्षेत्र हैं, जिन्हें हम गायत्री मंत्र में बोलते हैं, ॐ भू:, ॐ भुव:, ॐ स्व:, ॐ मह:, ॐ जन:, ॐ तप:, ॐ सत्यम्। ये गायत्री मंत्र की सप्त व्याहृतियाँ हैं, जो हमारे शरीर के अन्दर सात अस्तित्वों के नाम हैं। एक अस्तित्व तो यह दिखता है आपको, जिसे शरीर कहते हैं। यह भूलोक है। भूलोक का मतलब होता है पदार्थ की दुनिया। फिर भुवर्लोक है, स्वप्नों की दुनिया। स्वप्न क्या है, स्वप्न के समय तुम कहाँ रहते हो? निद्रा क्या है, उस समय तुम कहाँ रहते हो? ये भी तो चेतना की अवस्थाएँ हैं। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक, अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन सबका तो तुम्हें रोज अनुभव होता है। इनके अलावा चार लोक और हैं – महर्लोक, जनोलोक, तपोलोक और सत्यलोक।

लोक शब्द का मतलब क्या होता है? दिखाई देना। लोक का मतलब दुनिया नहीं होता है, ऐसा तो हम लोग आम बोलचाल में समझते हैं। लोक का शब्दार्थ होता है दिखाई देना, आलोकित होना। कोई चीज जो तुम्हारे सामने चमकती है, वह लोक है। किसी अनुभव की विषय-वस्तु लोक है। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में क्या दिखाई देता है, यह तो तुमको मालूम है। महर्लोक या जनोलोक में क्या आलोकित होता है? तपोलोक या सत्यलोक में क्या दिखाई देता है? दिखता तो कुछ जरूर है, लेकिन उसे कैसे बतलाएँ, यह तो वैसी ही चीज हुई जैसे गूँगे का गुड़!

आध्यात्मिक ज्ञान

जीवन का आधार अध्यात्म होना चाहिए। बच्चों को सबसे पहले इसी का संस्कार दिया जाना चाहिए। अध्यात्म वह विद्या है जिसमें तुम्हें अचिन्त्य के बारे में सोचना सिखाया जाता है। ईश्वर अचिन्त्य है न। अध्यात्म अचिन्त्य का चिन्तन है, अप्रमेय का ज्ञान है। बच्चों को आध्यात्मिक जीवन का परिचय अवश्य मिलना चाहिए, विशेषकर भारत में। भारत आई.टी., इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलोजी का देश है। यह कम्प्यूटर वाली इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलोजी नहीं, उस अचिन्त्य तत्त्व का इन्फॉर्मेशन। भारत ने हजारों-लाखों सालों से सारे संसार को उस तत्त्व का ज्ञान दिया है जिसे किसी ने देखा तक नहीं। हम लोगों को आई.टी. में महारत हासिल है। यह शरीर एक ऐसी मशीन, एक ऐसा कम्प्यूटर है जिसके अन्दर समस्त ज्ञान, सारी जानकारी है।

इस घट भीतर सात समन्दर
कोई मीठा कोई खारा
इस घट भीतर नौ लख मोती
कोई पन्ना कोई हीरा
अवधु अंधाधुंध अंधियारा
इस घट भीतर बैठा सर्जनहारा ।

सारे ब्रह्माण्ड का स्रष्टा तुम्हारे भीतर है। यही वह ज्ञान है, जिसे भारत ने वेदों के माध्यम से हजारों-लाखों साल पहले संसार को दिया। और यही वह इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलोजी है जिसके बारे में भावी संसार सोचेगा।

परमात्मा कौन है? वह कहाँ है? वह है भी यह नहीं? अगर वह है तो वह जानता है या नहीं कि वह है? भारत के सबसे पुराने ग्रंथ ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में ऋषि यही प्रश्न करते हैं। उस परमात्मा को किसी ने नहीं देखा, ऋषि-मुनियों को सिर्फ झलक मिली है। और उन्होंने दुनिया को बतलाया। ये ऋषि-मुनि इस भारत देश के रहने वाले थे। सरस्वती के किनारे उन्होंने यज्ञ किया और वेदों की रचना की। वह सरस्वती, राजस्थान में एक छोटी-सी नदी, जो अभी सैटेलाइट से दिखती है। वैज्ञानिक उसको मानने लग गए हैं। परमात्मा की यह जो विद्या है, इसे पहले बच्चों को सिखाओ। बच्चों को बहुत फायदा होगा, नहीं तो सब भटकने वाले हैं।

विषाद और योग

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अठारह अध्यायों में अर्जुन को अठारह योग सिखाए। अर्जुन को भगवान ने योग क्यों सिखाया? अर्जुन बीमार था क्या? हाँ, अर्जुन बीमार पड़ गया था। वैसे अर्जुन बहुत बहादुर था, अपने जमाने का श्रेष्ठ धनुर्धर था वह। द्रौपदी को उसने स्वयंवर में जीता था। पर लड़ाई के मैदान में जब आया तो बीमार पड़ गया, उसने भगवान श्रीकृष्ण से कहा –

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥1.29॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मन: ॥1.30॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।

'हे भगवान! मेरे रोम-रोम खड़े हो रहे हैं, मेरे हाथ से धनुष खिसक रहा है, मेरी हथेली में पसीना आ रहा है, मेरी चमड़ी जल रही है, और मेरे को सब उल्टा-पुल्टा मालूम पड़ रहा है। मैं खड़ा नहीं हो पा रहा हूँ, मेरा दिमाग घूम रहा है।' जैसे आप लोग कहते हैं, 'मैं कल से ऑफिस जाने वाला नहीं हूँ' या 'मेरे से यह काम नहीं हो सकता' या 'मैं स्कूल नहीं जाऊँगा', वैसी ही बात कह अर्जुन धनुष रखकर किनारे बैठ गया।

श्रीकृष्ण ने सोचा कि इसके लिए तो कोई मामूली दवाई काम करने वाली नहीं। तब उन्होंने उसको सांख्य, कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग, आदि का उपदेश दिया। उन्होंने सोचा कि अठारह दवाइयों में कम-से-कम एक तो काम करेगी। और वाकई काम कर गई। अठारहवें अध्याय में अर्जुन कहता है, 'हाँ भगवान, आप जो कह रहे हैं, मेरे को सब समझ में आ गया। जैसा आप कहेंगे, वैसा मैं करूँगा।'

अर्जुन की बीमारी को विषाद कहते हैं। विषाद की वजह से हृदय, पाचन तंत्र, पूरे शरीर के क्रिया-कलापों पर असर पड़ता है। पर यह विषाद है क्या? जैसे बिजली का कभी-कभी वोल्टेज गिर जाता है, वैसे ही आदमी के अन्दर विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा का स्तर जब गिरता है तब विषाद होता है। और जब वह बिजली बहुत ज्यादा हो जाती है तब आह्लाद होता है। कई लोगों को खुशी के मारे हृदयाघात हो जाता है न! विषाद और आह्लाद, दोनों अवस्थाओं को नियंत्रण में लाने के लिए कोई-न-कोई योग जरूर काम करेगा।

इस युग में वैसे तो बहुत लोगों ने योग पर लिखा है, पर सबसे अच्छे लेख हैं हमारे गुरु, स्वामी शिवानन्दजी के। उन्होंने सब विषयों पर किताबें लिखी हैं, सब कुछ अच्छी तरह से, विस्तार से समझाया है। योग का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर तुम खुद एक ऐसे योग शिक्षक बन सकते हो कि अपने मानसिक दु:खों को दूर करने की इच्छा लिए जो भी व्यक्ति तुम्हारे सम्पर्क में आएगा, उसकी तुम मदद कर सकोगे। हमने भी बहुतों की मदद की, क्योंकि हमको योग मालूम था। अब तो हम सिखाते नहीं हैं, क्योंकि अब हम अलग हट गए हैं। अब स्वामी निरंजन हैं, स्वामी सत्संगी हैं, अन्य लोग हैं। लेकिन इस बात को हमेशा याद रखो, योग में बहुत दूर तक तुम जा सकते हो।

अनासक्ति

एक बात अब रह गई, गृहस्थ और संन्यास। क्या कोई भी गृहस्थ योग की अन्तिम गति प्राप्त कर सकता है? गृहस्थ का मतलब क्या होता है? शादी, बच्चा, जोरू-जत्था, पैसा कमाओ, नौकरी करो, व्यापार करो, सामान मोल लो, कार रखो, मकान बनाओ – गृहस्थ का यही मतलब लगाया जाता है न! तो क्या इन सबके होते हुए भी वह अवस्था प्राप्त की जा सकती है? गीता कहती है, हाँ। संसार में रहते हुए, स्त्री, पुरुष, बाल-बच्चों के साथ रहते हुए, कर्म करते हुए, काम, क्रोध, लोभ और मोह के बीच में रहते हुए भी जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करना सबके लिए सम्भव है। अब सवाल यह उठता है कि तुम सब इस लक्ष्य के लिए कामना और प्रयास तो कर रहे हो, फिर भी तुमको वह प्राप्त क्यों नहीं हो रहा है? अवरोध कहाँ है?

इस प्रश्न का उत्तर भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में दिया है – *पद्मपत्रमिवाम्भसा।* कमल के पत्ते की तरह जल में रहना सीखो। जैसे कमल जल में ही रहता है, वैसे ही मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहे। तुम गृहस्थाश्रम में हो, मैं भी हूँ। तुम भी मरण के चक्कर में हो, मैं भी हूँ। तुम भी शरीर में रहते हो, मैं भी रहता हूँ। तुम भी खाना खाते हो, मैं भी खाता हूँ। तुम भी रात को सोते हो, मैं भी सोता हूँ। तब फर्क कहाँ पर है? भगवान बुद्ध से किसी ने यही सवाल किया था। भगवान बुद्ध ने कहा था, 'हाँ, जैसे तुम खाते हो, वैसे मैं भी खाता हूँ। जैसे तुम सोते हो, वैसे मैं भी सोता हूँ। जैसे तुम चलते हो, वैसे मैं भी चलता हूँ। जैसे तुम सोचते हो, वैसे मैं भी सोचता हूँ। जैसे तुम देखते हो, वैसे मैं भी देखता हूँ। जैसे तुम सुनते हो, वैसे मैं भी सुनता हूँ। मगर मैं बुद्ध हूँ और तुम

बुद्धु हो। इसका एक ही कारण है। तुमने अपने को संसार से अलग रखने की तरकीब नहीं खोजी है।' कपड़े को पानी में डाल दोगे तो गीला हो जाएगा, पर प्लास्टिक को पानी में डालोगे तो गीला नहीं होगा। कमल का पत्ता, जल से बाहर निकालो, एकदम सूखा रहता है। तरकीब मिल गई न!

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं – हे अर्जुन! संसार में रहना, लड़ाई करना, सत्ता को पाना, सत्ता के लिए संघर्ष करना, सुख-दु:ख के लिए संघर्ष करना, इसमें कोई दोष नहीं है, यह जीव का स्वभाव है। तुम लोगों से काम, क्रोध, लोभ आदि का त्याग नहीं करा सकते। अगर तुम लोभ को खत्म कर दोगे, चौबीस घण्टे के अन्दर दुनिया ही खत्म हो जाएगी। दुनिया की सारी प्रवृत्ति लोभ पर टिकी है। लोभ के बिना तो कर्म होता ही नहीं है। आदमी लोभ से ही प्रवृत्ति-मार्ग में जाता है। अब कहाँ-कहाँ नियंत्रित करोगे? इसलिए तुम सोचने का, दुनिया के साथ सम्बन्ध रखने का एक ऐसा तरीका निकालो कि जल में भी कमल के पत्ते की तरह रह सको। और उस तरीके को श्रीकृष्ण ने नाम दिया है, अनासक्ति। अनासक्ति का मतलब होता है किसी चीज पर आश्रित नहीं होना। अब अनासक्त बनने का तरीका क्या है?

पचास-साठ साल पहले की बात है। मैं ऋषिकेश में गुरु-आश्रम में रहता था। कम उम्र थी मेरी। मेरे को एक कमरा दिया गया था जिसमें एक चौकी थी, चौकी पर एक कम्बल था, दो धोतियाँ थीं, छोटा-मोटा सामान था और एक लोहे की बड़ी बाल्टी थी। इसी से मैं अपना काम चलाता था। आराम से जिन्दगी बीत रही थी। अन्नक्षेत्र में खाना मिल जाता था, जाकर खा लेता था। गंगाजी में नहा लेता था। कोई समस्या नहीं थी। एक दिन हमारे गुरुजी हमारे कमरे में आए। कहने लगे, 'अरे, तुम्हारा कमरा तो बिल्कुल संन्यासी के जैसा लगता है।' मैंने कहा, 'हाँ, हम संन्यासी ही तो हैं।' उन्होंने कुछ कहा नहीं, चले गए। शाम को उन्होंने हमारे कमरे में चार कम्बल, चार गद्दे, पाँच गिलास, चाय-पत्ती, दूध का पाउडर, किरोसीन स्टोव, माचिस वगैरह भेज दी। मैंने लाने वाले से पूछा, 'यह सब क्यों लाये?' तो उसने कहा, 'गुरुजी ने भेजा है।' सब सामान रखकर वह चला गया। एक कम्बल पर सोने वाले आदमी को चार गद्दों और चार कम्बलों पर सोना पड़ा!

स्वामीजी ने दूसरे दिन हमसे पूछा, 'हमने सामान भेजा, मिला क्या?' हमने कहा, 'स्वामीजी, सामान तो बहुत है, क्या करना है उसका?' उन्होंने कहा, 'देखो, यह तीर्थ-स्थान है। लोग आधी रात को आते हैं, आश्रम में ठहरते हैं।



कोई बीमार पड़ गया तो तुम उसको गरम पानी दे दिया करो। वह बेचारा कहाँ जाएगा गरम पानी के लिए?' हमने कहा, 'स्वामीजी, इसमें झंझट बहुत है।' स्वामीजी ने मुस्कुराते हुए कहा, 'बेटे, यह झंझट तभी तक है, जब तक कि तुम इसका उद्देश्य नहीं जानते। जब तक तुम्हारा इसके साथ सही सम्बन्ध नहीं होगा, तब तक यह झंझट है। लेकिन जब तुम्हें मालूम पड़ जाए कि मेरे कमरे में स्टोव है, पानी है, कभी कोई आ गया तो पानी गरम करके दवाई दे सकता हूँ, चाय या कॉफी बनाकर दे सकता हूँ, अगर तुम ऐसा सोचने लग जाओ कि इससे दूसरों की मदद कर सकता हूँ, तब तुम्हारा सारा सम्बन्ध बदल जाएगा।'

अनासक्ति का यही मतलब होता है। जब तुम दूसरे के लिए कुछ करते हो, तब तुम्हारा प्रत्येक कर्म अनासक्त कर्म होता है। चाहे उसका बिस्तर साफ करो या टट्टी साफ करो, तुम दूसरे के लिए कर रहे हो, अपने लिए नहीं। जमीन-जायदाद तुम्हारे पास है, सब कुछ तुम्हारे पास है, मगर अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए। यही अनासक्ति है। अनासक्ति में आदमी लड़ाई भी लड़ सकता है, नौकरी भी कर सकता है, तहसीलदारी भी कर सकता है, पेशकारी भी कर सकता है, सब कुछ कर सकता है। मगर दूसरों के लिए। अनासक्ति परमार्थ है, स्वार्थ नहीं। स्वार्थ में तो तुम अपने ही आशिक हो गए हो। गीता में जो भगवान श्रीकृष्ण का अनासक्ति का उपदेश है, वह हर व्यक्ति के लिए अपने अन्दर छिपे हुए परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय है। आज होली के दिन इतना भर याद रखना। यह संकल्प का दिन है, कोई अच्छा संकल्प धारण करना।

सत्संग

12 अप्रैल 2009



गुरु की आवश्यकता

एक गृहस्थ को भगवान को जानने में वही कठिनाइयाँ आती हैं जो एक संन्यासी को होती हैं। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए उसे किसी गुरु को पकड़ना होगा। यहाँ पर मुझसे सवालों का जवाब पूछना केवल सत्संग होगा। मैं जो बोल रहा हूँ, यह दीक्षा नहीं हो रही है, यह सत्संग है जहाँ मैं अपने विचार दे रहा हूँ। पर विचार देने से काम नहीं चलेगा। गुरु बनाना होगा, जो रास्ता बतलाएगा, क्योंकि हर एक आदमी का अलग-अलग संस्कार, अलग-अलग कर्म होता है। सब औरतों का एक पति नहीं होता और सब पतियों की

एक पत्नी नहीं होती। हर बाप का अलग बेटा होता है, हर बेटे का अलग बाप होता है। वैसे ही हर चेले का अलग गुरु होना चाहिए।

पति के बिना पत्नी का, पत्नी के बिना पति का, गुरु के बिना चेले का, चेले के बिना गुरु का बेड़ा पार नहीं लग सकता। जिस तरह से पति के लिए पत्नी एक आवश्यकता है, कामना है, अनिवार्यता है, वैसे ही चेले के लिए गुरु एक आवश्यकता है। और गुरु को ढूँढना पड़ता है।

लोग कहते हैं कि हर कोई इतना भाग्यशाली नहीं होता कि उसे गुरु मिलें। लेकिन हर लड़की को पति तो मिल जाता है न। हर लड़की की शादी नहीं होती है क्या? हाँ, कभी-कभी शादी विफल भी होती है, वह अलग बात है। पर, पति तो ढूँढना पड़ता है। उसमें बहुत-सी बातों का पता लगाते हो न। उसी तरह से गुरु का भी पता लगाना चाहिए।

दुनिया में गुरुओं की कमी नहीं है। चेलों की भी कमी नहीं है। केवल इतनी ही बात है कि रास्ते में किसी लड़की को पकड़ लो और कहो कि यह मेरी बीवी है, ऐसा तो नहीं हो सकता। वैसे ही किसी भी आदमी को पकड़कर बोलो कि यह मेरा गुरु हो गया, यह नहीं हो सकता। पानी पीना छानकर और गुरु बनाना जानकर।

शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु

आध्यात्मिक जगत् में एक गुरु वह होता है जो विचार या जानकारी देता है और एक गुरु वह होता है जो अनुभव देता है। विचार और अनुभव में अन्तर है। रसगुल्ला मीठा होता है, तुमको यह जानकारी है, पर रसगुल्ला खाये बगैर वह जानकारी अधूरी है। जब रसगुल्ला खा लोगे तब वह ज्ञान अनुभव में बदल जाएगा, विचार की जरूरत नहीं रहेगी। कुछ सत्संगी गुरु होते हैं, वे विचार और जानकारियाँ देते हैं, जैसे हम दे रहे हैं। और कुछ गुरु होते हैं जो आध्यात्मिक मार्ग में लेकर चलते हैं, जैसे छोटे बच्चे को तुम हाथ में हाथ लेकर चलते हो।

आध्यात्मिक मार्ग में ऐसा नहीं होता कि दिनभर बैठकर ध्यान लगा रहे हैं। गुरु शिष्य को समझाता है, ऐसा करो, वैसा मत करो, मंत्र देता है, साधना बतलाता है। फिर जब शादी हो जाती है, बच्चे हो जाते हैं, तब साधना बदलती है। बच्चे बड़े हो जाते हैं, वह पैंतालीस-पचास साल का हो जाता है, सेवानिवृत्त होता है, फिर साधना बदलती है। यह सब आध्यात्मिक गुरु बतलाते हैं।

ऐसी बात नहीं है कि लोग अन्य गुरु नहीं बनाते। इसमें कोई दो मत नहीं कि किसी भी विद्या में गुरु की आवश्यकता है। चाहे भौतिक विद्या हो, रसायन शास्त्र हो, जीव विज्ञान हो, पर्यावरण विज्ञान हो, वकालत हो या डॉक्टरी हो, एक शिक्षक की आवश्यकता हमेशा पड़ती है। और वह शिक्षक उस विषय में, उस विज्ञान में माहिर होना चाहिए। रामजी ने वशिष्ठ जी से दीक्षा ली। परन्तु विश्वामित्र और अगस्त्य से भी उन्होंने विद्या ग्रहण की।

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥

युद्धभूमि में रावण से लड़ते हुए जब रामजी बहुत थक चुके थे, लड़ाई के बीच में रावण को सामने देखकर, जो युद्ध के लिए तैयार था, वे जब चिन्ता से युक्त थे, तब अगस्त्य मुनि ने उनको मंत्र दिया, आदित्यहृदय का। तब तक मेघनाद मर चुका था, कुम्भकरण भी मर चुका था, सभी राक्षसों का संहार हो चुका था। पर रावण नहीं मर रहा था। उसके दस सिर फिर वापस आ रहे थे। *समरे चिन्तया स्थितम्* शब्द लिखा है, यानि लड़ाई में चिन्ता में स्थित, *रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा,* रावण को सामने देखा। उस वक्त अगस्त्य मुनि ने उनको आदित्यहृदय का मंत्र दिया और कहा कि राम, तुम इसका जप करो, तुम्हारी सारी बाधाएँ दूर हो जाएँगी। राम ने आदित्यहृदय का पाठ किया, युद्ध में प्रवृत्त हुए और रावण का संहार हुआ। इसका मतलब क्या हुआ, रामजी के तीन-तीन गुरु हो गए? क्या फर्क पड़ता है, विद्या किसी से भी ली जा सकती है।

अच्छे विचार, अच्छी शिक्षा किसी से भी ली जा सकती है। इसे ग्रहण करने के लिए जो भी गुरु तुम्हें सही वक्त पर मिल जाए, अगस्त्य मुनि की तरह, मना नहीं करना चाहिए। दत्तात्रेय जी के चौबीस गुरु थे। राम जी ने तो अपने वनवास के समय भरद्वाज जी का भी दर्शन किया और भरद्वाज जी ने उन्हें बहुत ज्ञान दिया। फिर शरभंग मुनि के आश्रम में गए। वहाँ भी उनको बहुत विद्यादान हुआ। और उसके बाद शबरी के यहाँ गए। शबरी ने ही उनको पम्पा सरोवर की तरफ भेजा था। आखिर गुरु का काम तो रास्ता बतलाना है! शबरी ने उनको पम्पा का रास्ता बतलाया, उनका रास्ता साफ हो गया। तो गुरु अनेक हो सकते हैं, किन्तु दीक्षा गुरु का एक होना आवश्यक है। रामजी के दीक्षा गुरु वशिष्ठ थे। श्रीकृष्ण के दीक्षा गुरु सांदीपनि थे। हमारे यहाँ

संत-महात्माओं का अन्तिम कथन यही है कि जैसे आयु और मृत्यु का समय निर्धारित होता है, वैसे ही गुरु भी निर्धारित होता है। सच बात तो यही है।

पुरुषार्थ और प्रारब्ध

इन्सान बहुत छोटा प्राणी है। यह सृष्टि कितनी विशाल है, इसमें कितने हजारों सौर-मण्डल हैं, कितने लाखों सूरज हैं, कितनी लम्बी दूरियाँ हैं, इसका हम अन्दाज भी नहीं लगा सकते। अगर सोचने बैठें तो न काल का अंत कहीं पता चलता है, न देश का। इतनी बड़ी सृष्टि में हमारा अस्तित्व ही कहाँ है?

इतना ही मानना पड़ेगा कि सब कुछ पूर्वनिश्चित है। इतनी विशाल सृष्टि में, जिसके बारे में तुम लोगों को थोड़ी-सी झलक दी है, यह मानना पड़ेगा कि जो हो रहा है वह निश्चित है, डरने की कोई बात नहीं है। अगर डरोगे तो वह भी निश्चित है! भय भी निश्चित है, चिन्ता, वासना, त्याग और मोक्ष भी निश्चित हैं। सब का समय निर्धारित है। इस सृष्टि का जो कम्प्यूटर है, उसका सब सॉफ्टवेयर निश्चित है। यह दुनिया एक निश्चित कानून पर चलती है। हम लोग यह नहीं कह सकते कि हमारे पुरुषार्थ से ऐसा हुआ या उसके पुरुषार्थ से वैसा हुआ। पुरुषार्थ नाम की कोई चीज नहीं है। पुरुषार्थ प्रारब्ध का अंश है। मैं पुरुषार्थ और कर्म करने से हतोत्साह नहीं कर रहा हूँ, लेकिन यह तय है कि सब चीजें निश्चित हैं। मशीन से लेकर दिमाग तक; दिमाग से लेकर सौर-मण्डल तक; सौर-मण्डल से लेकर समस्त ब्रह्माण्ड तक, सब नियत है।

अगर इस सृष्टि में कोई चीज नियत न हो, तब तो इसमें अराजकता फैल जाएगी। चाँद-सूरज अपनी मर्जी से उदय होंगे, गंगा जी कलकत्ते से हिमालय की ओर जाएँगी! बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने गार्गी से यही बात कही जो मैं तुमसे कह रहा हूँ। गार्गी एक ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी थी। एक बार राजा जनक का दरबार लगा हुआ था। उसमें जनक बैठे थे, याज्ञवल्क्य, सुलभा, गार्गी वगैरह भी बैठे थे। राजा जनक ने अपने मंत्री से ऐलान करवाया कि आप लोगों में जो अपने को सबसे अधिक विद्वान् समझता है, वह मेरी दस हजार गायों को ले जाए। सभा में बड़े-बड़े विद्वान् थे, लेकिन सब चुप रह गए। कौन कहे कि मैं सबसे बड़ा विद्वान् हूँ, नहीं तो दूसरा चुनौती दे देगा।

तब याज्ञवल्क्य उठे। उन्होंने अपने शिष्य से कहा, 'सोमश्रवा, हाँक कर ले जाओ सब गायों को।' जैसे ही याज्ञवल्क्य ने यह कहा, सभी विद्वान् खड़े



हो गए, बोले, 'तुम सबसे बड़े विद्वान् कैसे बन गये?' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'कुछ भी पूछ लो हमसे, जवाब दे देंगे।' अब विद्वानों ने याज्ञवल्क्य से एक-के-बाद-एक प्रश्न करने शुरू किये। अन्त में आई गार्गी। गार्गी ने प्रारब्ध के बारे में यही सवाल किया, जिस पर उन्होंने कहा–

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत।

हे गार्गी, यह जो अक्षर प्रशासन है, इसमें चन्द्रमा और सूरज अपने अलग-अलग नियम पर चलते हैं। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त अटल है, उसे कोई तोड़ नहीं सकता। चन्द्रमा और सूरज अपने समय पर उदित होंगे। कोई नदी अपना नियम भंग नहीं कर सकती, वह अपने रास्ते पर चलेगी। अगर यह निश्चित है, तो फिर सब कुछ निश्चित है। अगर प्रकृति के नियम पूर्वनियोजित हैं, तब फिर मेरी या तुम्हारी मृत्यु भी पूर्वनियोजित नहीं है क्या?

फिर तो कर्म भी पूर्वनियोजित होंगे।

कर्म भी नियति के अन्दर आते हैं। अगर तुम जी-तोड़ मेहनत करते हो, यह तुम्हारी नियति है। नियति का मतलब जो नियत है। एक और एक तीन नहीं, दो होता है, यह नियत है। जो चीज नियम के अनुसार चलती है, वह नियत

होती है। बिना नियम के कुछ नहीं चल सकता, न सूरज, न चन्द्रमा, न राशियाँ, न पानी, न तुम, न मैं। नौ महीने तुम्हारी माँ ने तुम्हें पेट में रखा, कैसे रखा? पानी में डूबे हुए थे तुम। जबान बंद, आँख बंद, कान बंद, सब बंद था, मछली के बच्चे की तरह। नौ महीने तक तुम जिन्दा रहे बिना साँस के। तुम्हारी माँ साँस ले रही थी और तुम जी रहे थे। किस नियम के बल पर? आदमी खाता है तो उससे हड्डी बनती है, लहू बनता है, हॉर्मोन्स बनते हैं, वीर्य बनता है, बाल बनते हैं, नाखून बनते हैं, टट्टी-पेशाब बनता है। सब जगह नियम लागू हैं। कहीं पर भी कोई विकल्प या व्यवधान नहीं मालूम पड़ता है।

इसलिए हमेशा इस बात को स्वीकार करो कि एक नियम है, जिसके अधीन सब कुछ है। अब अगर तुम अपने कर्म की बात कर रहे हो तो वह अपनी जगह ठीक है, पर याद रखो वह भी नियम के अन्तर्गत आता है। नियम के अन्तर्गत तुम दफ्तर जाते हो, वहाँ काम करते हो। पुरुषार्थ पूर्वनियोजित है।

इसका मतलब स्वेच्छा या पुरुषार्थ नाम की कोई चीज नहीं, प्रारब्ध ही सब कुछ है?

स्वेच्छा? किस चीज की स्वेच्छा? तुम हो कौन? एक छोटे-से इन्सान! इस विशाल सृष्टि में तुम्हारी हैसियत ही क्या है? इस अनंत सृष्टि में तुम कीड़े-मकोड़े की तरह हो। सृष्टि को छोड़ो, सारे हिन्दुस्तान में ही अगर तुम अपने को अनुपात की दृष्टि से देखो तो तुम्हारा पता ही नहीं कहीं। हिन्दुस्तान को भी छोड़ दो, केवल बिहार को ही ले लो। बिहार की जनसंख्या में अगर तुम अपना अनुपात निश्चित करोगे तो तुम कहीं हो ही नहीं, एक अणु के बराबर भी नहीं हो।

हम इस उम्र में आकर यही समझे हैं कि स्वेच्छा या पुरुषार्थ नाम की कोई चीज नहीं है। अगर है तो प्रारब्ध के अन्तर्गत है। तुम पुरुषार्थ कर रहे हो, क्योंकि यही तुम्हारा प्रारब्ध है। तुम कर्म करते हो, क्योंकि तुम्हारा एक मन है। उपनिषदों में *एकोऽहम् बहुस्याम्* कहकर कर्म के इस विषय को स्पष्ट किया गया है। पर फिर भी भ्रांति होती है। सबको भ्रांति है, अहंकार से तो भ्रांति होगी ही। पर एक मुकाम पर पहुँचकर आदमी को सब जानकारी हो जाती है। हम भी किसी जमाने में पुरुषार्थ के पक्ष में बोलते थे। परन्तु अब नहीं बोलते हैं। हमारे सामने सत्तर-अस्सी साल का अनुभव हो गया है, अब यही मालूम पड़ता है कि मैंने कुछ नहीं किया, वह तो अपने-आप हुआ।

हाँ, जब हम चौबीस-पच्चीस साल के जवान थे, तब इसी तरह सोचते थे। पर आज लगता है कि वह सोचना भी नियत था। उस नियति में कर्म भी आता है और पुरुषार्थ, स्वेच्छा, अहंकार तथा धैर्य भी आता है। परन्तु नियम के अनुसार। नियम का मतलब एक विधान है, एक कानून है, जिसके मुताबिक चलना होगा, जिसके मुताबिक कर्म होगा, स्वेच्छा होगी, जिसके मुताबिक रावण होगा, राम होगा, कंस होगा, कृष्ण होगा, यह लड़ाई होगी, वह लड़ाई होगी, तुम यह इच्छा करोगे, वह दूसरी इच्छा करेगा, इसको सुख होगा, उसको दु:ख होगा। यह सब भगवान की लीला है। यही सोचकर चलना चाहिए आदमी को। चाहे तुम कुछ भी बनो जिन्दगी में, कुछ भी पाओ, कुछ भी दो, कुछ भी हासिल करो, सब नियत है। सुख नियत है, दु:ख नियत है। प्राप्ति नियत है, अप्राप्ति नियत है। यह सारी सृष्टि नियम पर चलती है। इस सृष्टि के नियम को न मानना संभव नहीं। तुम भी नियम पर चलते हो, मैं भी नियम पर चलता हूँ।

एक नियम वह भी तो है जिसके अनुसार कर्म के अच्छे और बुरे फल मिलते हैं। लेकिन यदि कर्म हमारी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है, तो उसका जो फल होगा वह भी हमारी स्वेच्छा पर नहीं है, पहले से नियत है। फिर क्या प्रयोजन हुआ उस नियम का जो कर्म के अनुसार फल निर्धारित करता है?

तुम्हारी जो इच्छाशक्ति है, स्वेच्छा है, उसको कोई नकार नहीं रहा है। परन्तु स्वेच्छा भी नियम के अन्तर्गत है। तुम दफ्तर जाने के लिए स्वतंत्र हो, पर दफ्तर के नियम-कानून के दायरे में, और जिस दिन तुम नौकरी से सेवा-निवृत्त हो जाओगे, वहाँ नहीं जा सकोगे। कर्म के भी नियम होते हैं। कर्म का फल भी नियत होता है। आम के पेड़ से आम का फल निकला, नियत है। और आम किसने लगाया, वह भी नियत है।

तुमको नियति के परिप्रेक्ष्य में ही सब चीजों को समझना पड़ेगा। तब आसानी से सब प्रश्नों का समाधान मिल जाएगा। यह विचार कि 'मैं स्वतंत्र हूँ, सब कुछ कर सकता हूँ', सच नहीं है। भगवान भी, सृष्टि का स्रष्टा भी सृष्टि के नियम के अधीन है। *ऋतं च सत्यं च* – वेद कहता है, ऋत और सत्य दो नियम हैं और इन दो नियमों के आधार पर अखण्ड, अनंत ब्रह्माण्ड का जो मूल तत्त्व है, वह उसको चलाता है।



ऋत का मतलब क्या होता है?

ऋत का मतलब होता है प्राकृतिक नियम, प्राकृतिक विधान। सत्य का मतलब है वास्तविकता, जो हकीकत में होता है, जो घटित हुआ। ऋत का मतलब होता है वह नियम जिसके अनुसार वह घटित हुआ। ऋत और सत्य, ये दो चीजें सबका आधार हैं। हमारे यहाँ जो ब्रह्मा शब्द कहा जाता है, वही नियम है, वही विधान है। जिसको हमने अभी तक नियति कहा, वही ब्रह्मा हैं, जो नियम बनाते हैं, नियम धारण करते हैं और नियमों के अनुसार पूरी सृष्टि का ताना-बाना रचते हैं। पृथ्वी ही नहीं, चन्द्र-मंगल आदि ग्रह ही नहीं, बल्कि यह पूरी सृष्टि।

मैं जब छोटा बच्चा था, एक किताब मुझे मिली थी, 'अनंत अंतरिक्ष'। उस किताब को पढ़ने के बाद मैंने ग्रह-नक्षत्र, सौर-मण्डल, प्रकाश-वर्ष आदि के बारे में सोचना शुरू किया। मेरा तो दिमाग ही एकदम घूमने लग गया। मैंने सोचा, 'किताब बंद करके रख दो। यह सब अपने दिमाग के बाहर की बात है।' जिसके बारे में अभी बात हो रही थी, यह सब अजब तमाशा है। हम तो बहुत छोटे हिस्से हैं इस अजब तमाशे के। वेदान्त में जब देश, काल और वस्तु के बारे में चर्चा होती थी, हम अपने आचार्य से कहते थे, 'ये सब हम नहीं पढ़ेंगे।' देश, काल और वस्तु दिमाग के विषय नहीं हैं। कभी-कभी लगता है कि यह अजब तमाशा सचमुच में है भी या नहीं। जिस अनंत शब्द का दर्शन और विज्ञान में प्रयोग होता है, क्या यह मात्र एक अवधारणा है या वास्तविकता है? और क्या यह वाकई सम्भव है? क्या यह अनंतता किसी का स्वप्न तो नहीं? कहीं हम सब किसी अजब स्वप्न से सम्मोहित तो नहीं?

सत्संग

4 अक्टूबर 2009



आत्मा के शरीर छोड़ने के पश्चात् प्राणों का क्या होता है?

इस प्रश्न के समाधान के लिए तुम्हें मानव शरीर के अलग-अलग आयामों, आलग-अलग अवयवों की जानकारी होनी चाहिए। मनुष्य का एक अंश है शरीर, दूसरा है मन, तीसरा है आत्मा। सांख्य दर्शन में इन्हें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहा जाता है। यह भौतिक शरीर स्थूल है, तुम इसे देख सकते हो। मन सूक्ष्म है, तुम उसे देख तो नहीं सकते, लेकिन अनुभव अवश्य करते हो। इससे भी परे स्वप्न अवस्था है, जहाँ तुम सजग नहीं रहते, उसे कारण शरीर कहते हैं।

जब किसी की मृत्यु होती है, तब प्रथम दो शरीर, यानि स्थूल और सूक्ष्म, नष्ट हो जाते हैं। चाहे हिन्दुओं की तरह जला दो या ईसाइयों की तरह दफना दो, मगर स्थूल शरीर का अवश्य नाश हो जाता है। मन भी नष्ट हो जाता है। लेकिन कारण शरीर शेष रहता है। इसे लिंग शरीर भी कहते हैं। इस लिंग शरीर में कर्म के बीज रहते हैं। अच्छे-बुरे अनुभव, अच्छी-बुरी कामनाएँ, सभी तरह के कर्म यहाँ बीज रूप में होते हैं।

मृत्यु के बाद लिंग शरीर भौतिक देह से निकल आता है और अपने कर्मों की प्रकृति के अनुसार तैरने-सा लगता है, किसी हल्के-फुल्के बीज या किसी बीमारी के कीटाणु की तरह। वह यहाँ-वहाँ तैरता रहता है, जब तक उसे एक सही ठिकाना नहीं मिल जाता। और वहाँ वह स्थापित हो जाता है। किसी माता को ढूँढ लेता है, चाहे मनुष्य योनि में या गाय, साँप अथवा किसी अन्य योनि में, और वहाँ अपने आपको स्थापित कर लेता है। और फिर दुबारा पैदा होता है।

संक्षेप में यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। लेकिन इसका चौथे पद, चौथी अवस्था से कोई लेना-देना नहीं, जिसे तुम जीवात्मा कहो या जो भी नाम देना चाहो। वह चौथी अवस्था तीनों के परे है। वह जीवात्मा परमात्मा का अंश है। जिस तरह इस कमरे के प्रत्येक बल्ब में बिजली है, लेकिन वह बिजली एक ही पॉवर हाउस से आ रही है, उससे अलग नहीं है, उसी तरह जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है। कोई उसे भगवान कहता है, कोई ब्रह्म, तो कोई अल्लाह। किसी ने उसे देखा नहीं है, किसी को उसका कोई अन्दाज भी नहीं है, पर हम मानते हैं कि कोई ब्रह्माण्डीय सत्ता, कोई असीम मन जरूर है, जो जन्म और मृत्यु से परे है, जो न देश की सीमा में बंधा है, न काल की। और मैं उस तत्त्व से अलग नहीं।

मैं समूचा पॉवर हाउस तो नहीं, लेकिन उसकी बिजली जरूर हूँ। मैं ब्रह्माण्ड का एक अंश हूँ। मैं अपने अस्तित्व के चारों आयामों में विद्यमान हूँ। भले ही मेरा स्थूल अस्तित्व इस भौतिक शरीर तक सीमित है, लेकिन शरीर के बिना भी अस्तित्व होता है। अदृश्य होते हुए भी वह उतना ही वास्तविक होता है जितना यह भौतिक शरीर। आत्मा न पैदा होती है, न मरती है। हर एक रूप उसी का स्वरूप है। उसी को समष्टि में परमात्मा और व्यष्टि में जीवात्मा कहते हैं। सबसे सरल सिद्धांत यही है।

हम अपनी आत्मा का साक्षात्कार कैसे कर सकते हैं?

यही प्रश्न सिद्धार्थ ने किया था जब वे कपिलवस्तु छोड़कर अपने गुरु के पास पहुँचे। उनके गुरु ने कहा, पहले तुम सत्य के विभिन्न पक्षों को समझो। इसलिए कुछ सालों तक सिद्धार्थ ने शरीर की स्थिरता, मन की शुचिता, आसन, प्राणायाम, सांख्य, वेदान्त – यह सब सीखा। और फिर जैसे विद्यार्थी एक कक्षा छोड़कर दूसरी में चला जाता है, वे भी वहाँ से चले गए। तब तक उन्होंने अपने शरीर और मन को आत्मा के अनुभव के लिए तैयार कर लिया था।

अब यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु आता है। हर कोई आत्मा को नहीं जान सकता। जिस तरह काँच का हर गिलास खौलते पानी को धारण नहीं कर सकता, कुछ विशेष किस्म के गिलास ही ऐसा कर सकते हैं, उसी तरह मन को पहले तैयार करना पड़ता है। मन के ही द्वारा तुम्हें शरीर का, भावनाओं का, दिव्यता का, सभी प्रकार का अनुभव होता है।

मन की तैयारी एक ऐसी जीवन-शैली से होती है जिसमें आत्म-निग्रह हो। आत्म-निग्रह का मतलब तपस्या और त्याग; मन को मनमानी न करने देना, जो कुछ वह चाहे उसे न देना। मन तो बहुत कुछ चाहता है। जिस तरह एक छोटे बच्चे को मना किया जाता है कि फलानी चीज तुम्हारे लिए अच्छी नहीं है, उसी तरह मन को भी मना करना पड़ता है। मन के गुलाम मत बनो। तब जाकर मन मजबूत होता है, आध्यात्मिक अनुभव झेलने लायक बनता है। नहीं तो लोगों का मन बेहद कमजोर रहता है। मामूली भावनाओं और प्रतिक्रियाओं को तुम झेल नहीं सकते, तब उस दिव्य अनुभव को कैसे सम्भालोगे?

बच्चों की शिक्षा के बारे में आपके क्या विचार हैं? आजकल स्कूलों में आध्यात्मिक शिक्षा नहीं मिलती और फिल्में वगैरह भी उन्हें बिगाड़ती हैं।

माता-पिता बच्चे को केवल अच्छे संस्कार दे सकते हैं, अच्छी आदतें डाल सकते हैं। उसे वे सब बातें सिखा सकते हैं जो उसके शरीर, मन और भावी जीवन के लिए लाभदायक हैं। वे उसे शिक्षा और नौकरी-पेशे के बारे में सलाह दे सकते हैं। इतना वे कर सकते हैं, लेकिन जहाँ तक आध्यात्मिक जीवन का प्रश्न है, इसकी खोज बच्चे को स्वयं करनी होगी।

आध्यात्मिकता मानव जीवन का बीज है। यह सबमें है। चाहे बम्बई का बच्चा हो या न्यूयॉर्क या मंगोलिया का, आध्यात्मिक बीज सबमें है। और वह



बीज क्या है? भगवान की अनुभूति। एक दिव्य सत्ता की सजगता। अच्छा बनना समाज के लिए जरूरी हो सकता है। तुम्हारे बच्चे को अच्छा बनना है, क्योंकि उसे समाज में रहना है। उसे शिक्षा प्राप्त करनी है, क्योंकि उसे कोई नौकरी-पेशा करना है। लेकिन कभी-न-कभी उसे खुद एक अदृश्य सत्ता का आभास होगा। माता-पिता द्वारा सिखलाने लायक वही एकमात्र चीज है, लेकिन चाहकर भी वे उसे सिखा नहीं सकते।

इसलिए बच्चों को जीवन में अपना रास्ता खोजने की खुली छूट देनी चाहिए। अपने जीवन में जो करना चाहें, करने देना चाहिए। चाहे बम्बई जाएँ, चाहे संगीत में जाएँ। हाँ, संगीत एक ऐसी चीज है जिसकी तरफ उनका रुझान जरूर पैदा करना चाहिए। संगीत एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा बच्चा सुगमता से आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर सकता है। अगर उसे योग पसन्द है, वह भी चलेगा। अगर उसे पूजा-पाठ करना, आध्यात्मिक ग्रंथ पढ़ना पसन्द है, तो वह भी बहुत अच्छा है, पर इसमें जबरदस्ती नहीं करनी है। अगर जबरदस्ती करनी ही है तो संगीत में करो, क्योंकि किसी को भी संगीत नापसन्द नहीं। साँप तक को संगीत अच्छा लगता है। चाहे वह पाश्चात्य संगीत हो या भारतीय, लोक संगीत हो या शास्त्रीय, हिन्दुस्तानी हो या कर्नाटक, तुम ध्वनियों द्वारा मन को प्रभावित कर रहे हो। गाने को ही संगीत नहीं कहते,

संगीत में ताल भी होती है, सुर भी होता है, सितार, वायलिन, गिटार जैसे विभिन्न वाद्य भी होते हैं। और जब मन का सम्बन्ध ध्वनियों से जुड़ता है, तब स्पंदनों के स्तर पर, तरंगों के आयाम में परिवर्तन होता है। मन सूक्ष्म होता जाता है। और जैसे-जैसे तुम्हारा मन स्थूल से सूक्ष्म होता जाता है, तुम आध्यात्मिक बनते जाते हो।

इसलिए जो लोग संगीत में पारंगत होते हैं, वे हमेशा उच्च आध्यात्मिक स्तर के होते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने तो कहा ही है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ते तत्र तिष्ठामि नारद॥

'न मैं वैकुण्ठ में रहता हूँ, न ही योगियों के हृदय में। मैं वहीं रहता हूँ जहाँ मेरे भक्त मेरी गुण-गाथाओं का गायन करते हैं।' यह एक यथार्थता है।

ज्ञानयोग क्या है? क्या यह राजयोग का ही दूसरा स्वरूप है?

योग-परम्परा में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग मुख्य हैं। इन तीनों का सम्बन्ध क्रमश: कर्म, भावना और बुद्धि से है। अपनी बुद्धि और मन को जानना-समझना तो जरूरी है ही, लेकिन इससे पहले अपने कर्मों और भावनाओं से जूझना पड़ता है। किसी भी योग ग्रंथ को देख लो, उसका पहला सूत्र 'अथ' से प्रारम्भ होता है। जैसे *'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'* या *'अथ योगानुशासनम्'*। इसका मतलब होता है, 'इसलिए अब'। इसलिए अब अमुक योग की शिक्षा दी जा रही है। इसका तात्पर्य यह कि तुमने कुछ आवश्यक शर्त्तें पूरी कर लीं, इसलिए अब तुम आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लायक हो।

इसी तरह ज्ञानयोग को सीखने के लिए, इसका अभ्यास करने के लिए, तुम्हें कुछ शर्त्तों को पूरा करना पड़ेगा। नहीं तो यह मात्र बौद्धिक ज्ञान रह जाएगा। बौद्धिक ज्ञान अनुभव नहीं, सिर्फ जानकारी है। अगर तुमने किसी मिठाई के बारे में केवल सुना है, कभी उसे खाया नहीं, तो तुम्हें उसका वास्तविक अनुभव नहीं हुआ है। अनुभव तो व्यक्तिगत चीज है। ज्ञानयोग आत्मा का प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत अनुभव है। इसके लिए शांत मन, संयत इन्द्रियाँ, सांसारिक विषयों से अनासक्ति, धैर्य, गुरु और ईश्वर में विश्वास आदि होना चाहिए। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान – ये छ: योग्यताएँ हैं, जिन्हें षड्सम्पत्ति कहा जाता है। एक ज्ञानयोगी में ये छ:

योग्यताएँ अपेक्षित हैं। अगर वह इन शर्त्तों को पूरा नहीं करता, उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों का अध्ययन मात्र करता है, तो वह सिर्फ बौद्धिक ज्ञानयोग रहेगा, अनुभव में परिवर्तित नहीं होगा।

ज्ञानयोग पर स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शिवानन्द और महर्षि अरविन्द ने बहुत अच्छी किताबें लिखी हैं। ज्ञानयोग का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है ब्रह्मसूत्र। जिस तरह से राजयोग के लिए योगसूत्र, भक्तियोग के लिए शाण्डिल्य और नारद भक्ति सूत्र, और कर्म-मार्ग के लिए मीमांसा सूत्र हैं, वैसे ही ज्ञानयोग के लिए प्रामाणिक ग्रंथ है ब्रह्मसूत्र। लेकिन इसका अध्ययन पंचदशी के बाद ही करना चाहिए। पंचदशी पन्द्रह अध्यायों का ग्रंथ है, जिसको ब्रह्मसूत्र के अध्ययन से पहले भली-भाँति समझ लेना चाहिए।

हम अपनी नियति कैसे जान सकते हैं, अपने प्रारब्ध को पूरा कैसे कर सकते हैं?

तुम अपनी नियति की खोज कैसे कर सकते हो, वह तो अदृश्य है। कोई अपनी नियति नहीं जान सकता। कोई अपना भविष्य नहीं देख सकता। नियति कोई बॉलीवुड की फिल्म नहीं जिसकी शुरुआत देखते ही अंत का पता चल जाए। जिन्दगी के बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता। मोहनदास कर्मचन्द गाँधी जैसा मामूली वकील राष्ट्र का पिता बन जाता है। एक यहूदी बढ़ई का बेटा लाखों-करोड़ों के दिलों का सम्राट् बन जाता है। ईसामसीह की बात कर रहा हूँ यहाँ। चीन का नेता माओ भी एक मामूली आदमी था। लेकिन उसने चीन के लिए जो जबरदस्त काम किया, आज वह देश विश्व की भावी महाशक्ति है। इसलिए नियति का कभी पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता।

अपनी नियति के साथ तुम इतना ही समझौता कर सकते हो कि अपने घर-परिवार, पति-पत्नी, बाल-बच्चों के साथ एक शांतिदायक जीवन व्यतीत करो। बच्चे तुम्हारी तरह हों या तुमसे बिल्कुल अलग, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम शांति के साथ अपने छोटे-से घोंसले में रहो। मैं तुम लोगों को व्यावहारिक सलाह दे रहा हूँ। अपने लिए एक ऐसे आशियाने का इन्तजाम करो जिसमें तुम्हारे पास खाने, खर्च करने, मौज करने, सब चीजों के लिए पर्याप्त साधन हों। तब कहीं जाकर यह जानने का प्रयास करो कि प्रारब्ध क्या है, ब्रह्माण्ड क्या है, मन क्या है। सही रास्ता यही है। तब तुम अपनी कामनाओं के भँवर में, कुण्ठाओं के रेगिस्तान में यहाँ-वहाँ नहीं भटकोगे। मनुष्य होने के नाते

तुम्हारा एक भौतिक शरीर है, उसे एक ठौर-ठिकाना चाहिए। तुम्हारे अन्दर कामनाएँ और वासनाएँ हैं, उन्हें अभिव्यक्ति का अवसर देना चाहिए। मनुष्य की चार मौलिक प्रवृत्तियाँ होती हैं – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। सच पूछो तो पहले इन चारों को ठीक तरह से व्यवस्थित कर लो, उसके बाद ऐसे अजीबोगरीब सवालों का जवाब खोजते रहो।

लेकिन हमने सुना है कि गुरु नियति बदल सकते हैं।

नहीं, गुरु तुम्हारी नियति नहीं बदल सकते। तुम्हें बस कुछ सलाह दे सकते हैं, जैसे हम दे रहे हैं। विधि का विधान बड़ी विचित्र चीज है। कोई उसे बदल नहीं सकता। राम, कृष्ण, बुद्ध, महात्मा गाँधी, सब कितने शक्तिशाली व्यक्ति थे। लेकिन गाँधीजी के सामने हिन्दुस्तान बँटा। कृष्ण जैसे शक्तिशाली व्यक्ति के सामने द्वारका नष्ट हुई। हमारे ऊपर एक और शक्ति है, जिसको हम नियति कह सकते हैं। गुरुजी इस नियति को बदल तो नहीं सकते, हाँ गाड़ी को थोड़ा-सा दाएँ-बाएँ जरूर कर सकते हैं।



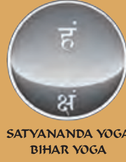


स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम (उत्तरांचल) में सन् 1923 की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हुआ। उनमें बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव था और विलक्षण प्रतिभाएँ परिलक्षित होती थीं। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरु की खोज में घर छोड़ दिया। 1943 में उन्हें ऋषिकेश में अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के दर्शन हुए। 12 सितम्बर 1947 को गुरु ने उन्हें परमहंस संन्यास में दीक्षित किया। वे 12 वर्ष गुरु की सेवा में रहे और आध्यात्मिक जीवन के हर आयाम में दक्षता प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने परिव्राजक संन्यासी के रूप में आठ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल एवं श्रीलंका का भ्रमण किया। इस अवधि का उपयोग उन्होंने यौगिक तकनीकों को प्रतिपादित एवं परिष्कृत करने में किया, ताकि मानवता को कष्टों से त्राण मिल सके।

योग की प्राचीन पद्धति को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर उन्होंने 1956 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अगले 20 वर्षों तक विश्व भ्रमण करते हुए उन्होंने योग की पताका विश्व के कोने-कोने में फहरा दी और बिहार योग विद्यालय को योग की एक अग्रगण्य संस्था के रूप में ख्याति दिलायी। उन्होंने योग, तंत्र एवं आध्यात्मिक जीवन पर अस्सी से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

'सत्यानन्द योग' एक ऐसी परम्परा बन गयी, जिसमें शास्त्रीय और अनुभवात्मक ज्ञान तथा आधुनिक दृष्टिकोण का सुन्दर समन्वय है। ग्राम्य-विकास की भावना से 1984 में उन्होंने दातव्य संस्था 'शिवानन्द मठ' की एवं योग पर वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से 'योग शोध संस्थान' की स्थापना की। सन् 1988 में उपलब्धियों के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने सबकुछ त्याग दिया और क्षेत्र संन्यास लेकर परमहंस संन्यासी की जीवन पद्धति अपना ली। सन् 1989 में उन्हें रिखिया आने का दैवी आदेश हुआ, यहाँ उन्होंने एकान्तवास करते हुए उच्च वैदिक साधनाएँ कीं। सन् 1991 में अपने पड़ोसियों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने का आदेश मिलने पर उन्होंने आश्रम को उस क्षेत्र के अभावग्रस्त ग्रामीणों की सहायता करने की अनुमति दी। सन् 1995 में उन्होंने वैश्विक सुख, शान्ति एवं समृद्धि का संकल्प लेकर बारह वर्षीय राजसूय यज्ञ आरम्भ किया और सन् 2007 में 'सेवा, प्रेम और दान' को अपनी मुख्य गतिविधि बनाने का आदेश देकर रिखियापीठ की स्थापना की घोषणा की।

स्वामी सत्यानन्द 5 दिसम्बर 2009 की मध्यरात्रि में अपने शिष्यों की उपस्थिति में महासमाधि में लीन हो गये।



श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती झारखण्ड राज्य के अज्ञात-से गाँव, रिखिया में सन् 1989 में पधारे और यहाँ उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। गहन वैदिक तपस्याओं और साधनाओं को सम्पन्न कर उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए संन्यास परम्परा का एक उच्च आदर्श स्थापित किया। सन् 2007 में उन्होंने 'सेवा, प्रेम और दान' के आदर्श को व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से रिखियापीठ की स्थापना की। 5 दिसम्बर, 2009 की मध्यरात्रि में वे यौगिक विधि से स्वेच्छानुसार महासमाधि में लीन हो गए।

यह पुस्तक श्री स्वामीजी द्वारा रिखियापीठ में 2005 से 2009 के बीच दिये गये सत्संगों का संकलन है, जिनमें उन्होंने रिखिया के विकास, यज्ञ परम्परा, यौगिक सिद्धान्त, बच्चों की शिक्षा, क्रिया योग, गीता की शिक्षा, ईसा मसीह, अपने जन्म, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, पुरषार्थ और प्रारब्ध जैसे अनेक प्रासंगिक विषयों पर अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। श्री स्वामीजी के व्यावहारिक तथा प्रेरक विचार जीवन में प्रकाश खोजते सभी जिज्ञासुओं को एक नयी दिशा और ऊर्जा प्रदान करते हैं।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-49-6